# पुरातत्व का विकास एवं अन्य विषयों से सम्बन्ध

## प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग में

बी०ए० तृतीय वर्ष की संग्रहालय एवं पुरातत्त्व विज्ञान के
पाठ्यक्रमानुसार परीक्षा हेतु प्रस्तुत

## लघु शोध-प्रबन्ध





1997

निदेशक
डॉ० देवेन्द्र कुमार गुप्ता
प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति
एवं पुरातत्त्व विभाग

प्रस्तुतकर्ता
नूरहसन अंसारी
बी०ए० तृतीय वर्ष



गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

# पुरात... से सम्बन्ध

## प्रा... विभाग में

...ान के






निर्देशक

**डॉ० देवेन्द्र कुमार गुप्ता**

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति
एवं पुरातत्त्व विभाग

प्रस्तुतकर्ता

**नूरहसन अंसारी**

बी०ए० तृतीय वर्ष

**गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय**
**हरिद्वार**

# पुरातत्त्व का विकास एवं अन्य विषयों से सम्बन्ध

## प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग में

बी०ए० तृतीय वर्ष की संग्रहालय एवं पुरातत्त्व विज्ञान के
पाठ्यक्रमानुसार परीक्षा हेतु प्रस्तुत



## लघु शोध-प्रबन्ध







**1997**


निर्देशक
**डॉ० देवेन्द्र कुमार गुप्ता**
**प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति**
**एवं पुरातत्त्व विभाग**

प्रस्तुतकर्ता
**नूरहसन अंसारी**
**बी०ए० तृतीय वर्ष**


## गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय
## हरिद्वार





विषय - सूची



مضمون اوّل

# First Chapter

पुरातत्व का परिचय, अर्थ एवं परिभाषा

مضمون دوم

# Seccound Chapter

विश्व में पुरातत्व का विकास




مضمون اوّل

# First Chapter

पुरातत्व का परिचय, अर्थ
एवं परिभाषा

مضمون دوم

# Secound Chapter

विश्व में पुरातत्व का विकास

## पुरातत्व का परिचय अर्थ एवं परिभाषा

परिचय :-

इतिहास मानव सभ्यता के विकास की एक कहानी है और इस विषय का प्रारम्भ मानव जन्म से ही प्रारम्भ हो जाता है। परन्तु पुरातत्व, इतिहास की तुलना में बिल्कुल नया विषय है। पुरातत्व का विकास उन्नीसवीं शताब्दी में प्रारम्भ हुआ। सामान्यत: प्राचीन ऐतिहासिक महत्व की वस्तुओं को पुरातत्व का नाम दे दिया जाता है। प्रत्येक देश के इतिहासकार अपनी उन सूचनाओं के लिए पुरातत्व पर आधारित रहते हैं, जहाँ कि वे पुन: अतीत में जा नहीं सकते और उस काल का इतिहास लिखना चाहते हैं। विशेष रूप से भारत में तो गत डेढ़ शताब्दियों से पूर्व मुस्लिम युग का समूचा इतिहास अन्वेषकों द्वारा प्राप्त किये गये तथ्यों एवं उत्खनन कर्ताओं की सामग्री के अध्ययन पर निर्मित है। भारत में विभिन्न स्थलों पर उत्खननों के द्वारा युगों - युगों की भारतीय संस्कृति अपने गौरवपूर्ण एवं आकर्षक स्वरूप को लिए हुए प्रकट हुई है।

पुरातत्व विज्ञान का अर्थ :-

अंग्रेजी भाषा में पुरातत्व को Archaiology कहा जाता है। जो दो शब्दों के मेल से बना है Arche + logy. Arche यूनानी भाषा के Archaios शब्द से लिया गया है, तथा Logy शब्द ग्रीक भाषा के Logos से लिया गया है। Archaios का अर्थ है प्राचीन अथवा प्रारम्भिक तथा Logos का अर्थ है, विज्ञान अथवा शास्त्र। अत: Archaiology का अर्थ हुआ प्राचीन वस्तुओं का विज्ञान। अर्थात वह विज्ञान जिसके अन्तर्गत प्राचीन वस्तुओं का अध्ययन किया जाता है पुरातत्व विज्ञान कहलाता है या जो विषय मानव समाज के प्रारम्भिक

जीवन से सम्बन्ध हो वह पुरातत्व के अन्तर्गत आएगा।

पुरातत्व विज्ञान की परिभाषाएं :-
-- x--- x--- x--- x--- x--- x-

विभिन्न इतिहासकारों ने पुरातत्व के विषय में अपने मत अलग - अलग शब्दों में व्यक्त किये हैं। कुछ इतिहासकारों एवं पुरातत्व वेत्ताओं की पुरातत्व के विषय में परिभाषाएं निम्नलिखित हैं।

O.G.S. Crawford के अनुसार:- "पुरातत्व विज्ञान की वह शाखा है, जिसमें अतीत के गर्भ में विलुप्त मानव संस्कृतियों का अध्ययन किया जाता है, और व्यवहार में इसका प्रमुख उद्देश्य आदि कालीन तथा प्रागैतिहासिक कालीन संस्कृतियों का विवरण प्रस्तुत करना होता है।"

Rott Handrit के अनुसार:- "पुरातत्व विज्ञान प्राचीन अवशेषों एवं वस्तुओं का अध्ययन है।"

गृहभमला के अनुसार:- "प्राचीन वस्तुओं का व्यवस्थित अध्ययन करके इतिहास का पुर्नलेखन कार्य पुरातत्व के अन्तर्गत किया जाता है।"

N. White के अनुसार:- "पुरातत्व के अन्तर्गत हम उन सभी वस्तुओं का अध्ययन करते हैं जो उसमें प्राचीन काल से वर्तमान तक उपभोग किया है। जैसे कि हत्यार, उपकरण, आभूषण, रहने के एवं अन्य कलात्मक वस्तुएं आदि।"

मिस्टर वैराकिट के अनुसार:- मानवीय कृतीम इतिहास के विकास का अध्ययन ही पुरातत्व विज्ञान है।"

डा॰ भगवत शरण उपाध्याय के अनुसार:- "पुरातत्व बहुत पुराना है, बहुत क्लिष्ट है। पुरातत्व का मार्ग गर्द और कंकड़ों से भरा हुआ है। गर्द, कंकड़, बिना

साफ किया हुआ चमड़ा चर्म - यही इसके उपादेय हैं, कार्य करने के तरीके हैं।"
सर लियोनार वुली के अनुसार:- "प्राचीन अवशेषों की खोज एवं उनका अध्ययन करके मानवीय इतिहास का पुर्नलेखन ही पुरातत्व विज्ञान है।"

उपरोक्त विद्वानों की परिभाषाओं को देखते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि पुरातत्व वह विषय है जो प्राचीन वस्तुओं को प्रकाश में लाकर इतिहास निर्माण में सहायता करता है। इसके अन्तर्गत मानव से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं का अध्ययन किया जाता है। पुरातत्वउन प्राचीन अवशेषों का अध्ययन करता है जिनसे किसीसंस्कृति की प्रमुख विशेषताओं का ज्ञान उपलब्ध होता हो। यह बात सही है कि पुरातत्व के माध्यम से अश्म कालीन तथा अन्य प्रागैतिहासिक संस्कृतियों का ज्ञान प्राप्त होता है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि पुरातत्व की परिधी के अन्तर्गत एतिहासिक काल नहीं आता। इतिहास मानव समाज की वह कहानी है जिसका आरम्भ इस धरती पर मनुष्य के पादुर्भाव के साथ ही हो जाता है।

पुरातत्व का प्रारम्भ एवं उसका विकास :-
---x---x---x---x---x---x---x---x-- मनुष्य के हृदय में अपने अतीत के प्रति नैसर्गिक जिज्ञासा देखी जाती है। जो प्राचीन साहित्य काव्यों तथा कथाओं में उपलब्ध विवरणों का आश्रय पाकर प्रखर हो उठती है। प्राय: सभी देशों के साहित्य मानव जाती के प्राचीन काल की कहानीयां पायी जाती है इनमें से कुछ तो काल्पनिक होती है परन्तु कुछ वास्तविकता पर आधारित होती

है । अत: इसमें मनुष्य का कुछ ज्ञान प्राप्त हो जाता है । भारत तथा मैसोपोटामिया मे जल प्लावन की कथा मिलती है । बहुत दिनों तक इसे काल्पनिक माना जाता रहा परन्तु मैसोपोटामिया में पुरातत्व वेत्ताओं को जो प्रमाण प्राप्त हुए उनसे यह बात साबित हो गयी कि कथा सत्य है । भारतीय परम्परा के अनुसार मानव समाज का विकास चार युगों अर्थात सत्य युग, द्वापर युग, त्रेता युग तथा कलयुग में सम्पन्न हुआ । पहला युग सर्वोत्तम था क्योंकि उस समय का समाज सत्य और न्याय पर आधारित था और उस युग का मनुष्य भी देवता समान था । परन्तु ज्यों - ज्यों समय बीतता गया मनुष्य की नैतिकता का ह्रास होता गया । इसी प्रकार की कई और कथाए उपलब्ध होती है । यूनान वासियों ने अपने अतीत की गाथा को महाकाव्य का रूप प्रदान किया । होमर ने ताम्रयुग का उल्लेख किया है और हेसिआड (Hesiod) ने मानव समाज के विकास को क्रमश: पांच युगों में विभाजित किया है । ये थे स्वर्ण युग, रजत युग, कांस्य युग, महाकाव्य काल । यद्यपि हेसिआड द्वारा की गयी समाज के विकास की यह कल्पना दार्शनिक है, परन्तु इसका आधार वस्तुत: कास्य युग की वास्तविक परम्परा है ।

प्राचीन काल के कई अन्य यूरोपीय दार्शनिकों ने जैसे अरस्तू, टैसिटस, ल्यूक्रेटियस तथा प्लेटो इत्यादि ने मनुष्य के आदि काल का उल्लेख अपने - अपने ढंग से किया है। इनमें कवि तथा दार्शनिक ल्यूक्रेटियस की देन महत्वपूर्ण मानी जाती है । उसकी पुस्तक De Rerum Nature में इस मत का प्रतिपादन किया गया है कि समाज के विकास में आदि काल में मनुष्य अपने

नाखून, दांत, पत्थर, लकड़ी आदि का उपयोग करता था तत्पश्चात उसने ताबे का उपयोग सीखा और अंत में उसे लोहे के प्रयोग का ज्ञान प्राप्त हुआ ।

यूनान रोम में पुरातात्विक विकास:-
---x---x---x---x---x---x---x मानव के आदि कालीन जीवन में यूनान एवं रोम के दार्शनिकों ने विशेष रूची दिखाई । परन्तु उन्होंने अपने दार्शनिक विचार के कारण ऐसा कोई प्रयास नहीं किया जिससे कि पुरातत्व का विकास हो पाता । जिससे उन्होंने प्राचीन वस्तुओं के समूह, उनका वर्गीकरण तथा विश्लेषण और खंडहरों पर ध्यान नहीं दिया । अत: यूरोपिय मध्य काल तक इस क्षेत्र में कोई प्रगति नहीं हो पायी जब धार्मिक पुर्नजागरण हुआ तो यूरोप के प्राचीन प्रतिष्ठित युग में लोगों की जागृति उत्पन्न हुई और हेरोडोटस, अरस्तू, ल्यूक्रेटियस की रचनाओं का अध्ययन एवं मनन होने लगा ।

यूनान एवं रोम के लोगों में आदिमानव के प्रति जो जिज्ञासा बनी रही उसका यह परिणाम हुआ कि पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में रोम के नागरिकों ने प्राचीन एवं विचित्र वस्तुओं का संग्रह करना प्रारम्भ किया । कुछ लोगों ने प्राचीन कलात्मक वस्तुओं का अच्छा संग्रह कर लिया । इस युग में इटली में प्राचीन कलात्मक वस्तुओं में अभिरूची रखने वाले व्यक्तियों को 'डिलेटैन्टी' कहा गया वे इस युग के कला प्रेमी जन थे । इस युग के लोगों की गणना पुरातत्व के जन्म दाताओं में की जाती है ।

इटली वासियों में जो पुरातात्विक प्रक्रिया एवं कलात्मक वस्तुओं का शौक उत्पन्न हुआ था वह अट्ठारवी शताब्दी के आते - आते ठन्डा पड़ गया । और रोम नगर के संग्रह जहां - तहां बिखर गये । परन्तु रोम के कलात्मक वस्तुओं का इतना समूह होगयाथा कि 1717 - 1768 जोहन विलकन जर्मनी के पुरातत्वज्ञ ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना की तो उन्हें उसके लिए अधिकांश सामग्री रोम में ही उपलब्ध हुई । 'विकलमन' महोदय पुरातत्व के जनक माने जाते है वे प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने प्राचीन कला का समुचित अध्ययन कियाउनके पूर्व के विद्वानों ने जो प्राचीन कलात्मक वस्तुओं का संग्रह कर रखा था । उसका उन्होंने शैली के आधार पर वर्गीकरण किया । उनकी पुस्तक बहुत प्रसिद्ध हुई जिससे वे सम्पूर्ण यूरोप में विख्यात हो गये । यद्यपि आधुनिक मापदण्ड के अनुसार उन्हें पुरातत्वज्ञनहीं कहा जा सकता परन्तु पुरातत्व के क्षेत्र में उनकी देन महत्वपूर्ण है। क्योंकि उन्होंने इस दिशा में एक परम्परा का विकास किया उन्होंने जिस अध्ययन को शुरू किया उसकी परिणति पुरातत्व के विकास के रूप में है ।

सोलहवी एवं सत्रहवी शताब्दी में पुरातत्व का विकास; इंग्लैण्ड में पुरातत्व का विकास:-

सोलहवी और सत्रहवी शताब्दी की अवधि में जब इटली वासी प्राचीन वस्तुओं के संग्रह में लगे हुए थे उसी समय इंग्लैड मे प्राचीन वस्तुओं के अध्ययन सम्बन्धी एवं अन्य प्रकार के विषय का जन्म हुआ । जोन स्टोव, विलियम कैनेडिल, जोन नार्डेन, जोन लीलैन्ड, हम्फी ल्वीड, आदि तत्कालीन विद्वानों ने अपनी रचनाओं में भूतत्व विवरण प्रस्तुत किये। इस कार्य के लिए उन्होंने देश के महत्वपूर्ण स्थानों की यात्रा की जीहन लीलैन्ड ने वेल्स तथा इंग्लैंडके ग्रामों एवं ऐतिहासिक

नगरो, प्रागैतिहासिक महत्व के स्थानों का विवरण प्रस्तुत किया । विलयन कैमेडिन ने तत्कालीन विद्वानों में सबसे अधिक महत्व का काम किया इन्होंने सम्पूर्ण ब्रिटिस दीप समूह मे घूम - घूम कर पुरातात्विकज्ञान संचय करके 'ब्रिटानिया' ग्रन्थ लिखा जो 1586 ई० में प्रकाशित हुआ । विलियम कैमेडेन को व्हीलर महोदय ब्रिटिस पुरातत्व के जनक मानते है इनके द्वारा लिखित ग्रन्थ का प्रथम प्रकाशन लैटिन भाषा में हुआ था शीघ्र ही इसके संस्करण अन्य भाषाओं में प्रकाशित हुए । इस ग्रन्थ ने बहुत लोगों को ब्रिटेन के प्राचीन अवशेषों के विषय में विवरण प्रस्तुत करने की प्रेरणा दी । कैमेडेन तथा उनके समकालीन विद्वानों के परिणाम स्वरूप 1572 ई० में एक प्राचीन राष्ट्रीय अवशेषों के संरक्षण के विचार से एक संस्था की स्थापना की गयी । दुर्भाग्यवश इस संस्था को जेम्स प्रथम ने यह कहकर बंद करा दिया कि इसके उद्देश्य राजनैतिक हैं । परन्तु इस थोड़े से समय में भी इस संस्था के तत्वाधान में जो शोधनिबन्ध लिखे गये, उनका 1720 ई० मे "ए कलेक्शन आफक्यूरिओज डिस्कवर्ड बाईएमिनेन्टएन्टिक्वेरिज"[1] के नाम से प्रकाशन किया गया ।

सत्रहवीं शताब्दी में इग्लैण्ड में प्राचीन वस्तुओं के अध्ययन में प्रगति होती रही । विलियम कैमेडेन और लिलैंड ने जिस परम्परा की शुरूआत की, उसको इस शताब्दी में विलियम डुग्डेल, राबर्ट प्लाट, एडवर्ड ल्वीड और जान आब्रे उन विद्वानों में थे जो प्राचीन वस्तुओं का अर्थ सहित अध्ययन करते थे । इन दोनों की गणना प्रथम अंग्रेज पुरातत्व वेत्ताओं में की जाती है एडवर्ड ल्वीड ने कैमेडेन

1- A Clection of Querioes discoverd by aimnent antiquavarij

- 8 -

द्वारा लिखित ब्रिटानिया के सम्पादन का भार ग्रहण किया और इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए उन्होने वेल्स का पांच वर्षों तक भ्रमण किया । डेनियल महोदय के विचार में यहीं पुरातत्व के गम्भीर क्षेत्र अध्ययन का जन्म हुआ । आब्रे ने Stonehenge और Avebury का विवरण प्रस्तुत किया और यह मत व्यक्त किया कि इन स्मारकों का निमार्ण सम्भवत: मन्दिर के रूप में हुआ था । पुरातत्व के विकास में आब्रे ने विशेष स्थान प्राप्त किया है । लिटैन स्ट्रैची इन्हें प्रथम अंग्रेज पुरातत्व वेक्ता मानते हैं । डेनियन महोदय भी कुछ हद तक आब्रे को प्रथम अंग्रेज क्षेत्र - पुरातत्वज्ञ मानते हैं ।

सत्रहवी शताब्दी में अंगेजों की एक और देन पुरातत्व के क्षेत्र में महत्वपूर्ण मानी जाती है । यह देन थी अद्भुत वस्तुओं का पहला संग्रह, जो अर्ल आरूडेल द्वारा किया गया था । दूसरा संग्रह ड्यूक आफ बकिंघम ने किया इस विषय में चार्ल्स प्रथम को तो उन्होंने इस कार्य के लिए अपने एक एडमिरल को ईजियन सागर में संग्रह कर्ता - प्रतिनिधी नियुक्त किया । अद्भुत वस्तुओं के संग्रह कर्ताओं में जान ट्रेडस काँट एक सामान्य व्यक्ति थे परन्तु उन्होंने जो संग्रह किया वह बड़े काम का निकला। इनका ही संग्रह आगे चलकर ऐश्मोलियन संग्रहालय में रखा गया । इन्हीं दिनों जेम्स प्रथम ने, जिन्होंने प्रचीन वस्तु संग्रहकर्ताओं की संस्था को भंग कर दिया था, ने यह पाया कि प्राचीन वस्तुओं का संग्रह, राज्य तथा कामन-वेल्थ के लिए हितकर होगा । अत: उसने इस संस्था को मान्यता प्रदान कर दी और उसे पुन:खुलवाया । इस प्रकार सोलहवीं एवं सत्रहवीं शताब्दीयों में प्राचीन वस्तुओं के संग्रह और अध्ययन की अच्छी प्रगति हुई ।

## अटठारवी शताब्दी में पुरातत्व का विकास

अटठारवी शताब्दी में भी पुरातत्व का विकास तेज गति से होता रहा । इस समय भी प्राचीन वस्तुओं के अध्ययन का विकास क्रमशः जारी रहा । इस समय तीन निम्नवर्णित क्षेत्रों में सबसे अधिक पुरातत्व का विकास हुआ ।

1• यूनानी सभ्यता की खोज

2• रोमांटिक आंदोलन

3• प्रकृति के इतिहास का विकास

### यूनानी सभ्यता की खोज

इस समय विद्वानों में यूनानी सभ्यता के प्राचीन अवशेषों की खोज एवं उनके अध्ययन की विशेष अभिरूची देखने को मिलती है । इसका कारण यह था कि सन् 1750 - 1830 की अवधि में अंग्रेज विद्वानों ने प्रचीन यूनान के अवशेषो पर ध्यान दिया और उनकी खोज करके उन का सही विवरण प्रस्तुत किया गया । इस नई खोज से संग्रहकर्ताओं तथा घुमक्कड़ों को यूनान जाकर वहां के अवशेषों पर टिप्पणियां लिखने, उनके चित्र बनाने तथा वहां उत्खनन कराने की प्रेरणा मिली यूनान वासियों ने अपने जीवन की कथाओं को महाकाव्य कारूप प्रदान किया अन्धे

कवि होमर ने इलियड और आडिसी नामक महाकाव्य लिखा था, इलियड की तुलना महाभारत से की जाती है। एक बार श्लीमान नामक एक लड़का अपने पिता से होमर की कथा सुन रहा था। कहानी सुनने के बाद उसने अपने पिता से पूछा क्या यह कहानी सत्य है तो उसने उत्तर दिया कि यह काल्पनिक है। लेकिन उस लड़के ने विश्वास नहीं किया और उसने उस का पता लगाने की अपने मन में ठान ली और कई वर्षों के बाद वह उस स्थान की खोज करने लगा। वह हिसारलिक के मैदान में पहुंचा और उसने सोचा कि यहीं कहीं प्रियम नगर रहा होगा। वह प्रियम नगर के बारे में सोच रहा था कि उसे यह विचार आया कि इलियड़ में यह वर्णन आया है कि किस प्रकार एकीलीज ने भाले से वार करके हैक्टर को वहीं ढेर कर दिया था और फिर उसका मृत शरीर रथ के पीछे बांधकर तीन चक्कर लगाए थे। इससे नौ मील का घेरा हुआ था और यह स्थान समुद्र से नौ मील ही दूर था। अत: ऐसा अनुमान कर वह उस स्थान के पास गया और वहां पर उसने थोड़ी सी पथरीली और ऊपर उठी हुई जमीन पर अपना डेरा लगाया और वहां पर उसने उत्खनन प्रारम्भ किया यहां से उसने प्रियम के खजाने की खोज प्रारम्भ की। आज हिसारलिक नामक स्थान एक वास्तविकता बन चुका है। पुरातत्व वेत्ताओं ने एशियाई कोचक में सागर तट के निकट हिसारलिक नामक एक टीले की खुदाई करके वहां से विभिन्न कालों की दस से भी अधिक बस्तियां खोज निकाली हैं। यहां की प्रत्येक बस्ती अपने पीछे मकानों के खंडहर और फैकी हुई या छिपाई हुई चीजें छोड़ गयी थी। वहीं ट्राय के खंडहर मिले जिन पर आग से जलने के निशान साफ दिखाई दे रहे थे। उत्खनन द्वारा अब

यह स्पष्ट हो गया है कि ट्राय नगर वास्तव में था और विनष्ट किया गया था । इतिहास कारों ने यूनानीयों के आक्रमण की तिथी 1200 ई॰ पू॰ निर्धारित की गयी है । भारतीयमहाकाव्यों की भांति ही इन यूनानी महाकाव्यों से तत्कालीन यूनानीयों के सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक जीवन की महत्वपूर्ण सूचनाऐंप्राप्त होती हैं। यह सूचनाऐं इतनी अधिक महत्वपूर्ण है किइस कारण ग्याहरवीं - नौवी शताब्दी ई॰ पू॰ के काल को होमर काल के नाम से ही जाना जाता है । यूनान की यह खोज इतिहास में महत्वपूर्ण मानी जाती है ।

चित्रकार जेम्स स्टुआर्ट तथा रेवेट महोदय ने सन् 1751 - 53 में एथेन्स में यात्रा की और वहां रहकर वहां के प्राचीन स्मारकों का जो अध्ययन प्रस्तुत किया वह एथेन्स के पुरावशेष नाम से चार जिल्दों में प्रकाशित हुआ । इस समय संग्रहकर्ताओं के महान युग की शुरूआत हुईइसी बीच 'सोसायटी आफ डिलटैन्टी' ने भी एक अध्ययन दल सन् 1764 ई॰ में आयोनिया भेजा । जिसकी उपलब्धि 'एन्टीक्यूटिज आफ आयोनिया' नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुई । राबर्ट वुड, और जेम्स डाकिन्स द्वारा यूनान, एसियामाइनर, सीरिया, फीलीस्तीन तथा मिश्र का भ्रमण करके जो सामग्री संग्रहीत की गई इसका पुस्तक प्रकाशन रूमन्स आफ पालामिर, रूमन्स आफ बिल्बैक के नाम से प्रकाशित हुआ। अठारवी शताब्दी में इन घुमक्कड़ों रिसर्चेरों ने जनता को भूमध्य सागरिय सभ्यताओं की कलात्मक विशेषताओं से भी परिचित कराया । वे अपने साथ ऐसी प्राचीन वस्तुऐं को भी लाये जो आगे चलकर पुरातात्विक संग्रहालयों में बहुमूल्य निधि बन गयी ।

इस समय प्राचीन अवशेषों के अध्ययन सम्बन्धी जिस प्रकार के कार्य हो रहे थे। वे सभी बड़े खर्चीले पड़ते थे अंग्रेज शोधकर्ताओं ने विदेशी शोध को छोड़कर स्वदेशी प्राचीन अवशेषों पर ध्यान केन्द्रित करना आरम्भ कर दिया अब उन्होंने प्राचीन काल के कब्रो किलो, पत्थरों के बने स्मारको, झोपड़ियों आदि के अध्ययन का कार्य प्रारम्भ किया इस प्रकार के अध्ययन कार्य करने वालों मेंविलयम स्टुकेली की देन महत्वपूर्ण है। वे सिद्धान्तत: एवं व्यवहारत: दोनों दृष्टियों में एक महान पुरातत्ववेत्ता थेउन्होने जो कुछ भी पुरातत्व विवरण प्रस्तुत किया वह तत्सम्बन्धी संस्थानों एंव वस्तुओं का पूरी तरह से स्वय निरीक्षण करके सम्पन्न किया।

प्रकृति के इतिहास का विकास:-
--x---x---x---x---x---

अट्ठारवी शताब्दी में अनेक संस्थाओं की स्थापना की गयी जिनके माध्ययम से प्रकृति के इतिहास और पुरातन वस्तुओं के अध्ययन के विकास का मार्ग प्रशस्त होता गया इन संस्थाओं में लंदन की दो शाखाएं 'सोसाइटी आफ डिलेटैन्टी' और दूसरी 'सोसाइटी आफ एटिक्वेरिजआफ लंदन' का महत्वपूर्ण स्थान है। इन संस्थाओं का कार्य था कि इस क्षेत्र के विद्वान परस्पर एक दूसरे से वार्ता करके आपस में विचारों का आदान प्रदान करें। परन्तु पुरातत्व के क्षेत्र में अब तक जो कुछ भी प्रगति यूनान की खोज तथा प्रकृति विज्ञान के फलस्वरूप हुई वह उस समय तक अधूरी ही रही जब तक भूतत्व विज्ञान का सहयोग इस शास्त्र को नहीं मिल पाया। भूतत्व विज्ञान के बगैर पुरातत्व के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती। पुरातत्व को भूतत्व विज्ञान की देन बहुत ही महत्वपूर्ण है।

## मिश्र में पुरातत्व का विकास

पाश्चात्य जगत को मिश्र के गौरवशाली अतीत का वास्तविक ज्ञान उन्नीसवीं शताब्दी में प्राप्त हुआ । लेकिन मिश्र के पुरातात्वि अवशेषों में यूरोप की जनता में रूची जाग्रत करने का श्रेय नैपोलियन बोनापर्ट को दिया जा सकता है । नैपोलियन के मिश्र पर आक्रमण करने से पूर्व यूरोप वासी मिश्र के विषय में अधिक नहीं जानते थे वे केवल इतना जानते थे कि वह अतीत में एक समृद्ध सभ्यता का केन्द्र था परन्तु नैपोलियन के 1798 के सैनिक अभियान ने मिश्र के सही रूप को मिश्र वासियों के समक्ष प्रस्तुत कर दिया । उसके हृदय में अतीत के प्रति स्वाभाविक जिज्ञासा थी । मिश्र पर आक्रमण करने वाली सेना में एक ऐसा दल भी था । जिसका कार्य उस देश के भूगोल तथा प्राचीन अवशेषों का अध्ययन करना था । मिश्र के अतीत के गौरव का विवरण प्रस्तुत करने के लिए एक फ्रान्सीसी मिश्री संस्था की स्थापना भी की गयी । इस संस्था ने उत्साह पूर्वक कार्य किया । परन्तु नैपोलियन की असफलता के कारण इसकी उन्नति को एक झटका लगा । फिर भी इस संस्था को बन्द नहीं किया गया परन्तु अंग्रेजों की विजय होने के कारण इस संस्था के संग्रह पर अंग्रेजों का कब्जा हो गया और अंग्रेजों ने सभी संग्रहीत वस्तुओं को इंग्लैण्ड के संग्रहालयों में पहुंचा दिया । परन्तु फ्रांसीसी मिश्री संस्था के सदस्यों ने कई पुस्तकों का अनेक जिल्दों

'Description of Egypte' के नाम से प्रकाशन किया । जिससे उस देश के प्राचीन अवशेषों के विषय में पाश्चात्य जगत के विद्वानों की जिज्ञासा में वृद्धि हुई ।

उन्नीसवी शताब्दी में पुरातत्व का विकास
--x---x---x---x---x---x---x---x---x--

पुरातत्व के इतिहास में उन्नीसवी शताब्दी का बड़ा महत्व है । क्योंकि इस समय ही पुरातत्व की वैज्ञानिक विधियों का विकास हुआ । तथा महत्वपूर्ण पुरातत्व खोज सम्पन्न किये गये । इंग्लैण्ड, फ्रांस, अमेरिका, डेनमार्क, बेलजियम, स्वीडन, स्वीटजरलैण्ड आदि देशों में जिज्ञासु शोधकर्ताओं की साधना के फलस्वरूप ही पुरातत्व को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करना सम्भव हुआ इस सम्बन्ध में प्रकृति विज्ञान के विकास ने पुरातत्व में महत्वपूर्ण योगदान दिया । उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भिक वर्षों में तत्कालीन विद्वानों ने मिश्र यूनान तथा अन्य निकटवर्ती देशों के गौरवशाली अतीत का इतिहास जानने के लिए अनेक महत्वपूर्ण कार्य किया ।

जिनमें मिश्र की लिपी , ईरान की लिपी को पढ़ागयाअनेक पुरास्थलों पुराअवशेषों कापता लगा लिया गया एवं भू विवरण सम्बन्धी अध्ययन के क्षेत्र में भी प्रयाप्त प्रगति हुई । उन्नीसवी शताब्दी के आरम्भ में अंग्रेज विद्वानों की कला वस्तुओं में रूची घटने लगी । लेकिन इसके साथ - साथ इन दिनों जर्मनी के विद्वानों ने पुरातत्व विषय की ओर ध्यान दिया, और इस विषय में अपनी धाक जमा ली । दूसरी ओर अंग्रेज विद्वानों ने क्लासीकल पुरातत्व को छोड़कर प्रगैतिहासिक वस्तुओं के अध्ययन पर विशेष ध्यान देना प्रारम्भ किया । अत: विलयम कनिंगटन , सर रिचार्ड कोल्टहोर प्रभृति निदानों ने कईप्राचीन स्थलों की खुदाई कर ड़ाली इन्ही दिनों सम्पूर्ण देश काभूसर्वेक्षण भी पुरा कर लिया गया कोल्ट होर महोदय कानाम उत्खनन कर्ताओं मे उल्लेखनीय है । इन्होंने 379 बैरों को सावधानी के साथ खोदा । इन्होंने विभिन्न प्रकार के बैरोके भेद बतलाने के साथ - साथ मूल तथा गौण कब्रों के उत्खनन को भी स्पष्ट किया । इनके साथ ही कनिंगटन महोदय का नाम लिया जाता है । क्षेत्रीय पुरातत्व को इन दोनों विद्वानों की देन महत्वपूर्ण मानी जाती है । और इन्हें इंग्लैण्ड में उत्खनन के जनक के नाम से जाना जाता है ।

प्रांस में पुरातत्व का विकास :-
—x—x—x—x—x—x—

उन्नीसवी शताब्दी के आरम्भ के वर्षों तक प्रांस के पुरातत्व के विकास की प्रगति इंग्लैण्ड के समान ही रही वहां सत्रहवीं शताब्दी में प्राचीन वस्तुओं के अध्ययन का कार्य प्रारम्भ हुआ उन दिनों क्लासिकल प्राचीन अवशेषों का अध्ययन किया जाता था कालान्तर में प्रांसीसी विद्वान स्वदेशी पुरावशेषों के लिए गर्व का अनुभव करने लगे। फलस्वरूप 1804 ई॰ में एल॰ एकेडमिकक्लटीक्यू की स्थापना की गयी जो 1814 ई॰ में सोसाइटी रायल्स डैस एन्टीक्यूरीज डी प्रांस में परिणत हो गया इस प्रकार प्रांस में स्वदेशी प्राचीन वस्तुओं के अध्ययन पर पूरा ध्यान दिया गया। परन्तु प्रागैतिहासिक संस्कृतियों के क्रमिक विकास की समस्याओं के समाधान की दिशा में कोई कार्य नहीं किया गया। इस महत्वपूर्ण कार्य कोतत्पश्चात डेनमार्क, स्वीडन, के विद्वानों ने सम्पन्न किया।

उन्नीसवीं शताब्दी में मनुष्य की सृष्टि सम्बन्धी वैज्ञानिक धारणाएं प्रकाशमें आयी। ~~जिस कारण प्राचीन धारणायें प्रकाश में आयी~~। जिस कारण प्राचीन धारणायें पूर्णतः बदल गयी। ये धारणायें लेम्फ द्वारा प्रतिपादित एक रूपताका सिद्धान्त, त्रिगुण सिद्धान्त का प्रतिपादन, डार्विन के विकासवाद

का सिद्धान्त और भूगर्भ शास्त्रीयों तथा पुरातत्वज्ञों द्वारा मनुष्य की प्राचीनता का विश्वसनीय साक्ष्य उपलब्ध करना । भूतात्वज्ञों द्वारा मानव अस्तित्व के प्रमाण की उपलब्धि तथा डार्विन के विकासवाद के सिद्धान्त ने तत्कालीन विचार जगत में क्रान्तिकारी परिवर्तन किये । भूतत्व विज्ञान में प्रकृति की एक रूपता के सिद्धान्त का मान लिया गया । इसी सिद्धान्त के अनुसार पृथ्वी की परतों का विकास उन क्रियाओं द्वारा हुआ जो आज भी समुद्रों नदीयों झीलों में विद्यमान है । भूगर्भीय परतों के निर्माण की व्याख्या करना तब तक सम्भव नहीं हुआ जब तक हम यह नहीं मानते कि एक ऐसी प्रक्रिया ने उनका निर्माण किया जो वर्तमान समय में भी सदृश साधनों द्वारा सम्पन्न हो रहा है । इस सिद्धान्त ने मनुष्य के अस्तित्व की प्राचीनता को संदेह से परे कर दिया । नयी खोजों के परिणाम स्वरूप मनुष्य के इतिहास का काल लाखों वर्ष का मान लिया गया ।

प्राचीन वस्तुओं को इकट्ठा करने का जो शौक मनुष्य ने अपनाया इस कारण इन वस्तुओं के यत्र - तत्र के बड़े - बड़े भन्डार बन गये इसका असली फायदा मनुष्य को डेनमार्क में बने भन्डार से प्राप्त हुआ । डेनमार्क के प्रोफेसर रैसमस न्येरप के प्रयासों से वहां की सरकार ने 1807 ई० में स्वदेशी प्राचीन वस्तुओं के संरक्षण एवं

संग्रह के उद्देश्य से एक समिति का गठन किया । प्रो.- भेरप इस संस्था के सचिव थे । जब कोपेन - हेगेन में राष्ट्रीय संग्रहालय का निर्माण हुआ तो उसमें इस संस्था द्वारा संग्रहीत वस्तुएंप्रमुख थी इस संग्रहालय में प्राचीन वस्तुओं के संग्रह को देखकर तत्कालीन विद्वानों का ध्यान उनके अध्ययन, वर्गीकरण एवं डेनमार्क के प्राचीन इतिहास से उनका सम्बन्ध निर्धारित करने की ओर आकृष्ठ हुआ और अंततोगत्वा पुरातत्व के त्रियुग सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया । श्री टामसन महोदय का नाम इस सिद्धान्त के जनक के रूप में लिया जाता है । परन्तु वेडेल सिमोसेन ने सर्वप्रथम त्रियुग की धारणा की परिकल्पना की थी । उन्होंने 1813 ई॰ में लिखा कि स्कैंडिनेविया के मूल निवासी सबसे पहले पत्थर और लकड़ी के हथियार और उपकरण काम में लाते थे । उसके बाद उन्हें तांबे के उपयोग का ज्ञान प्राप्त हुआ और फिर वे लोहे का इस्तेमाल करने लगे अत: इस दृष्टिकोण से उनके इतिहास को अश्म युग ताम्र युग एवं लौह युग में विभाजित किया जा सकता है । इन युगों में समय का स्पष्ट विभाजन नहीं था कि दो सभ्यताएं साथ - साथ नहीं पनप पायी हों । इसमें कोई सन्देह नहीं कि ताम्र युग का अविर्भाव होने पर ही निर्धन जनता पत्थर के बने उपकरणों का प्रयोग करती रही और जब लौह युग आया तो तांबे के उपकरण काम में लाये जाते रहे । परन्तु वेडेल सिमोसेन के इन विचारों की लोगों ने उस समय तक

अपेक्षा की जब तक टामसेन के सबल प्रमाणों द्वारा इसकी पुष्टि नहीं की । राष्ट्रीय संग्रहालय के प्रथम क्यूरेटर ( 1816 - 65 ) तथा प्राचीन वस्तुओं के संग्रह एवं संरक्षण के लिए स्थापित डेनमार्क की राष्ट्रीय समिति के सचिव टामसन महोदय, न्येरप के उत्तराधिकारी थे, उन्होंने संग्रहालय की प्राचीन वस्तुओं को तीन वर्गों में विभाजित किया । पत्थर, तांबे और लोहे की बनी वस्तुओं को अलग - अलग रखा । इस प्रकार जो विभाजन हुआ उससे प्राचीन वस्तुओं के अध्ययन में एक विशिष्ट भाषा का सूत्रपात हुआ । टामसन ने त्रियुग सिद्धान्त को राष्ट्रीय संग्रहालय के मार्गदर्शन प्रमाणिक रूप में प्रस्तुत किया । तदन्तर उनके शिष्यों ने इसे विकसित किया और अन्य देशों में भी इसका प्रचार हुआ स्वीडेन के विद्वानों के बीच यह सिद्धान्त बहुचर्चित होकर उस देश में पुरातत्व के विकास में लाभदायक हुआ। लुंड और स्काटहोम के संग्रहालयों के पुरावशेष का इस आधार पर वर्गीकरण किया गया । उन्हीं दिनों जर्मनी के संग्रहालयों में भी पुरावशेष के वर्गीकरण हेतू इस सिद्धांत को अपनाया गया । त्रियुग सिद्धान्त के सम्बन्ध में टामसेन लिखित गाइड ( 1836 ई० ) जिसके जर्मनी और अंग्रेजी संस्करण क्रमशः ( 1837 ई० और 1848 ) ई० में प्रकाशित हुए तथा वोरी की टामस द्वारा अंग्रेजी में अनुदित उन्नीसवी शताब्दी के पूर्वार्ध में प्रकाशित पुरातत्व

की सम्भवत: सर्वाधिक महत्व की रचनाएं थी । आगे चलकर इस दिशा में जो कार्य हुए जिनसे प्रगैतिहासिक अध्ययन के क्षेत्र का उत्तरोतर विस्तार होता गया ।

पुरातत्व के इतिहास में 1859 ई० का बड़ा महत्व है । इस साल डार्विन के 'ओरिजिन आफ स्पैसिमस' का प्रकाशन हुआ और सही अर्थ में प्रगैतिहास का अस्तित्व भी इसी वर्ष से माना जाता है । 1859 ई० में दो प्रमुख वैज्ञानिकों ने भूगर्भ शास्त्रीयों द्वारा उपलब्ध मनुष्य की प्राचीनता सम्बन्धि साक्ष्य को प्रमाणित किया । इस घटना का पुरातत्व के विकास में अत्यन्त दूरगामी प्रभाव पड़ा ।



मिश्र तथा मैसोपोटामिया में क्षेत्र पुरातत्व सम्बन्धी अनेक काम पूरे किये गये । 1822 ई० में चेम्पोलियन दवारा रोसेटा अश्मफलक में उत्कीर्ण मिश्र की चित्रात्मक लिपी का पढ़ा जाना इस देश की प्राचीन सभ्यता का ज्ञान प्राप्त करने की दिशा में अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना मानी गयी । मिश्रकी भूमि में उत्खनन कार्यकोप्रारम्भ करने वाले में बेलजोनी का नाम उल्लेखनीय है । यद्यपि इस व्यक्ति में उत्खनन सम्बन्धीवैज्ञानिक दृष्टिकोण का अभाव था । परन्तु उसने 1817 - 19 ई० में अनेक कब्रों को खोद कर उनमें उपलब्ध पुरावस्तुओं को इंग्लैंड



स्थानान्तरित कर दिया । मरिएटी महोदय ने तत्कालीन मिश्र में किये जा रहे उत्खनन और अन्वेषण कार्यों को नियोजित किया । 1850 ई॰ में वहां गये और तमाम जिन्दगी, 1880 ई॰ तक काम करते रहे । उन्होंने मैंफिस सहित तीस महत्वपूर्ण पुरास्थलों का उत्खनन किया । परन्तु उत्खनन की सही तकनीक का सहारा नहीं लेने के कारण मरिएटी ने बहुमूल्य पुरातात्विकसाक्षों को विनष्ट कर डाला इसके पश्चात जब पेट्री महोदय ने मिश्र में पुरातात्विककार्यों की शुरूआत की तो वहां पुरातत्व का स्वरूप ही बदल गया इनकी उपलब्धियां बड़ी महत्वपूर्ण मानी गयी । राजवंशी पूर्व मिश्री सभ्यता का सर्वप्रथम विवरण पेट्री के प्रयास से ही प्रस्तुत किया जा सका । मैसोपोटामिया में बोटा, लार्यड और रसम ने महत्वपूर्ण उत्खनन सम्पन्न किये । बोटा ने नाइन्वे और लार्यड ने निमयद तथा असुर का उत्खनन किया । लार्यड के कार्यों को रसम ने जारी रखा और 1853 ई॰ में इन्हें असुर बनी पाल के महल का पता लगा । यूरोप में 1853 - 54 ई॰ में स्विटजरलैण्ड़ के जलास्य बस्तियों के 200 स्थानों का पता लगाप्रागैतिहास के क्षेत्र में पुराश्म काल तथा नवाश्म काल को आवधारणा का विकास हुआ और इस प्रकार पुरातत्व के इतिहास में इस शताब्दी की उपलब्धी का महत्व निर्विवाद है ।

# مضمون سوم

# Third Chapter

## भारत में पुरातत्व का प्रारम्भ एवं विकास

# مضمون سوم

# Third Chapter

## भारत में पुरातत्व का प्रारम्भ एवं विकास

## भारत में पुरातत्व का विकास

भारत में पुरातत्व का विकास वस्तुत: 19 वीं शताब्दी में प्रारम्भ हुआ परन्तु फिर भी भारतीय पुरातत्व के इतिहास में 15 जून 1784 ई॰ का दिन बहुत महत्वपूर्ण एवं खुशी का दिन है। इस दिन सर विलियम जोन्स द्वारा कलकत्ते में एसियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल की स्थापना की गयी और उन्होंने इस संस्था के माध्यम से भारतीय पुरातत्व को आगे बढ़ाया। लेकिन उन दिनों जो कार्य किये गये वह पुरातत्व पर आधारित नहीं थे परन्तु फिर भी इससे इतना फायदा हुआ कि लोगों में इससे पुरातत्व के विषय में रूची जाग्रत हुई। एसियाटिक सोसाइटी का पुरातत्व के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण कार्य एसियाटिक रिसर्वेज नामक पत्रिका को निकालना एवं कलकत्ते में संग्रहालय का निर्माण है। एसियाटिक सोसाइटी ने जो कार्य किये वे साहित्य पर आधारित थे परन्तु सर विलियम जोन्स ने ऐसे कई प्रमुख कार्य भी किये जो पुरातत्व के क्षेत्र में महत्वपूर्ण है। उन्होंने चन्द्रगुप्त एवं सैन्डोक्रोटस की अभिन्नता को प्रमाणित किया और पालीब्रोथ्रा की खोज की विलियम जोन्स के सहयोगी ने भी पुरातत्व के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया। चार्ल्स विलिकसन और कोलबुक ने लिपी सम्बन्धी उल्लेनीय कार्य किये और इसके साथ - साथ उन दिनों एलौरा, एलीफेन्टा, कन्हेरी इत्यादि पश्चमी भारत के महत्वपूर्ण पुरावशेषों पर काम किया गया।

परन्तु भारत में पुरातत्व का विकास उन्नीसवी शताब्दी से ही शुरू हुआ इस समय भारत सरकार ने सर्वेक्षण के कार्य पर ध्यान देना शुरू किया । यह कार्य फ्रांसीसी बुधानन महोदय को दिया गया । उन्होंने दिनाजपुर, रंगपुर, पूर्णिमा, भागलपुर, बिहार, शहाबाद और गोरखपुर जिलों के सर्वेक्षण के कार्य को आठ सालों में खत्म किया । इस सर्वेक्षण का सार 271 जील्दों में प्रकाशित किया गया किन्तु इनमें अधिकांश के अप्रकाशित रह जाने से इस प्रकार का काम वहीं रूक गया । सर विलियम जोन्स के बाद 1833 ई० में जेम्स प्रिंसेप महोदय को एसियाटिक सोसाइटी का सचिव बनाया गया । उन्होंने पुरातात्विक कार्य को प्रोत्साहन दिया । वे वैज्ञानिक थे अत: उन्होंने वैज्ञानिक पद्धति का इस्तेमाल किया । उन्हें अपने कार्य क्षेत्र में बहुत तेजी से सफलताएं मिलती गयी । इनकी ब्राह्मणी एवं खरोष्टी लिपी को पढ़ने की देन महत्वपूर्ण मानी जाती है । इन्होंने अशोक एवं प्रियदर्शी को अभिन्न प्रमाणित किया । वे मुद्राशास्त्र एवं अभीलेख के अच्छे ज्ञाता थे । परन्तु उन्होंनेसर्वेक्षण एवं सही रेकार्ड रखने की महत्ता की कभी उपेक्षा नही की । और वे उत्खनन से भी अनभिज्ञ नहीं थे । लेकिन उस समय भारत से बाहर भी जहां - जहां पुरातात्विक कार्य हो रहे थे जैसे मिश्र और मैसोपोटामिया में वहां प्राचीन वस्तुओं के समूह का प्रमुख उद्देश्य अध्ययन न होकर संग्रहालय सजाना था । इसमें भी भारतीय विद्वानों की देन विदेशी विद्वानों

की तुलना में कम नहीं है । प्रिंसेप महोदय से बड़ी उम्मीद थी परन्तु इसी बीच उनका देहान्त हो गया जिससे पुरातत्व की तरक्की को कम झटका लगा । लेकिन उनके उत्तराधिकारीयों ने देश के विभिन्न भागों में काम किया जिनमें प्रमुख जेम्स फ्रगयूसन, एलैग्जेन्डर, कनिंघम, इलियट, कर्नल मिडीज टेलर आदि विद्वानों ने अपनी महत्वपूर्ण उपलब्धियों से भारतीय पुरातत्व को समृद्ध किया । इस प्रकार भारत के अतीत के गौरव के विषय में कार्य लगातार होता रहा । परन्तु इसका सही विकास तब हुआ जब भारत सरकार ने 1961 ई॰ एक अलग विभाग, पुरातत्व विभाग बनाया । जिसके अध्यक्ष एलैग्जेन्डर महोदय को बनाया गया । लेकिन 1861 से 1902 तक भारतीय पुरातत्व की कोई खास तरक्की नहीं हो पाईक्योंकि इसी बीच में यह संस्था कई बार बन्द की गयी । परन्तु इस दौरान जो काम किये गये वे इस देश में पुरातत्व के विकास में महत्वपूर्ण थे । इसी दौरान तीन व्यक्तियों जनरल कनिंघम, जेम्स बर्गस, फरगूसन ने महत्वपूर्ण कार्य किया । इसी अवधी में फलोर बूलर, भगवान लाल, इन्द्र जी और हुल्टज ने भारतीय अभिलेखों के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया ।

पुरातत्व सर्वेक्षण के प्रधान के रूप में कनिंघम महोदय ने बड़े लगन तथा उत्साह के साथ इस देश के कार्य को आगे बढाया उन्होने पंजाब, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, बिहार और बंगाल के विस्तृत भूभाग पर सर्वेक्षण कार्य कराकर वहां के पुरातात्विक स्थलों, समस्त प्राचीन अचल अवशेषों का अध्ययन प्रस्तुत किया । वह भारतीय पुरातत्व के क्षेत्र में महत्वपूर्ण माना जाता है । कनिंघम महोदय का प्रमुख उद्देश्य बौध स्थलों की खोज था । इसलिए उसने चीनी यात्री ह्वेनसांग ( हाएनसांग ) के यात्रा विवरण को अपना मार्गदर्शन बनाया । जहां - जहां पर इस चीनी यात्री ने सफर किया वहीं - वहीं कनिंघम महोदय ने सफर किया । यात्रा सम्बन्धी यह काम उस समय एक बहुत कठिन काम था क्योंकि यातायात सुविधा के अभाव में इन्हें अधिकांस यात्रा घोड़े, बैलगाड़ीयों के अलावा पैदल भी करनी पड़ीकनिंघम महोदय ने पुरातत्व के क्षेत्र में बहुत अधिक महत्वपूर्ण कार्य किया उनसे पहले इतना ज्यादा कार्य पुरातत्व के क्षेत्र में नहीं हो सका इसलिए उन्हें भारतीय पुरातत्व जनक माना जाता है । यह सही है कि उन्होंने पुरातात्विक प्रमाणों का नुकसान भी किया परन्तु इसमें उनकी कुछ गलती नहीं थी वे कम समय में ज्यादाह काम करना चाहते थे और दूसरे उस समय पुरातत्व की वैज्ञानिक विधयों का विकास नहीं हो पाया था । जनरल कनिंघम के अपने पदसे इस्तिफा देने के बाद

पुरातत्व सर्वेक्षण का जो पुर्नगठन हुआ उसके अनुसार प्रमुख निदेशक के समन्वयात्मक अधिकार खत्म कर दिये गये । पश्चिमी भारत का काम जेम्स बर्गेस के हाथों रह गया । जेम्स महोदय पेशा तथा रूची दोनों से वास्तुशिल्पी थे अत: उन्होने पश्चिमी भारत के उन सभी अवशेषों का विवरण प्रस्तुत किया जो जो केवल वास्तु कला से सम्बन्धित थे । बर्गेस ने प्रत्येक स्मारको के विवरण में रेखांकन एवं चित्रांकन किया । बर्गेस महोदय तथा उनके अनुयायिओं ने सातवाहन, चालुक्य राष्ट्रकूट एवं पल्लव तथा होशियल इत्यादि राजवंशों के गुफाओं एवं मन्दिरों की कलात्मकता का विवरण प्रस्तुत किया लेकिन उनके बाद भारतीय पुरातत्व के क्षेत्र में अव्यवस्था का साम्राज्य हो गया और यह तब खत्म हो सका जब लार्ड कर्जन ने सन् 1900 ई॰ में पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग का पुर्नगठन किया । और इसके महानिदेशक पद पर सर जान मार्शल महोदय को नियुक्त किया वे अपने पद पर 1904 से 1934 ई॰ तक रहे । सर जान मार्शलको यूनान, क्रीट और टर्की में पुरातत्व का प्रशिक्षण प्राप्त हुआ । इस सुयोग्य एवं समुचित प्रशिक्षित पुराविद की इस पद पर नियुक्त से भारत में पुरातत्व की उल्लेखनीय प्रगति हुई । अपने तीस वर्षों के समय में उन्होंने भारतीय पुरातत्व का अपार विकास किया । इसी बीच भारत में कई अन्य स्थानों पर पुरातत्विक विभाग स्थापित किये गये ।

ये भारत के देशी राज्यों मैसूर, ट्रावन कोर, जयपुर और बड़ौदा में स्थापित किये गये । चूंकी मार्शल महोदय ने यूनान में प्रशिक्षण प्राप्त किया था अत: प्राय: वे भारतीय संस्कृति में यूनानी तत्वों की खोज में लगे रहते थे । भारतीय पुरातत्व के क्षेत्र में उनकी देन महत्वपूर्ण मानी जायेगी । उन्होंने अपने विभाग का पुर्नगठन भी किया । उन्होंने पुरातत्व विभाग को कई मंडलों में विभाजित किया । जिससे प्रमुख स्मारकों के संरक्षण एवं नई खोजों का काम अधिक सुव्यवस्थित हो गया इसी दौरान प्रथम विश्व युद्ध छिड़ गया और भारतीय पुरातत्व के क्षेत्र में सन् 1904 से 1920 ई॰ तक कोई खास तरक्की नहीं हो पायी परन्तु काम करने का जो थोड़ा बहुत समय मिला उसमें अनेक प्रचीन स्मारक एवं अभिलेख खोज निकाले गये । उत्तर भारत में तक्षशिला का एवं नालन्दा का उत्खनन इसी दौरान किया गया । इसके साथ इसी समय सांची, सारनाथ, भीटा इत्यादि स्थानों का भी उत्खनन हुआ ।

भारतीय पुरातत्व के क्षेत्र में अब तक प्रगति तो हुई लेकिन मानव के आदि काल के सम्बन्धमें कोई जानकारी नहीं प्राप्त हो सकी । जिसके कारण आदिकालीन मानव की सभ्यता का पता लग पाता । लेकिन इसके लिए तत्कालीन विद्वान दोषी नहीं हैं क्योंकि उस समय पुरातत्व सम्बन्धि कार्यों का प्रमुख उद्देश्य प्राचीन

- 28 -

कलात्मक वस्तुओं से संग्रहालय को सजाना एवं बीते युग की सनसनी खोज प्रस्तुत करना था । दूसरे अब तक पश्चिमी विद्वान भारत की प्राचीनता को उल्लेखनीय नहीं मानते थे । वे सोचते थे कि इसका तिथी निर्धारण मौर्यकाल से पूर्व नहीं किया जा सकता । अतएव भारत के आदिकाल पर ध्यान नहीं दिया गया । कई वर्षों तक तक्षशिला के अलावा और किसी स्थान पर उत्खनन नहीं हुआ । जिससे कि भारत के इतिहास के किसी युग की लोगों को जानकारी हो पाती ।

मार्शल महोदय इस बात को सोचते थे कि भारत के अतित के निर्माण में अवशेषों का ठीक प्रकार से उपभोग नहीं किया जारहा था । उन्होने इस सम्बन्ध में "कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इन्ड्रिया" में अपने विचार इन शब्दों में रखे, "भारतीय इतिहास की यह बदकिस्मती है कि इसके आदिकाल एवं अंधकार युगों का ज्ञान तत्कालीन अवशेषों से प्राप्त नहीं किया जा सकता ।" उनके यह लिखने के दो वर्ष बाद ही हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ो की खुदाई की गयी जिसमे एक सुविकसित सभ्यता के प्रमाण उपलब्ध होने से उस समय के इतिहास जगत में सनसनी पैदा कर दी । भारत के अतीत के विवरण में इस गौरवशाली अध्याय के जुड़जाने से विश्व के इतिहासज्ञ जो अब तक भारतीय सभ्यता को अति प्राचीन मानने से इनकार करता था अब वे भारत की प्राचीन सभ्यता के गौरव को मानने

लगे । एक दूसरे से 400 मील की दूरी पर स्थित दो एक समय की महानगरों में समान सभ्यताओं के प्रमाण उपलब्ध होने के कारण विद्वान इस सभ्यता के उदय, विकास और प्रसार के विषय में सोचने लगे अब पुरातत्व के दृष्टिकोण में भी परिवर्तन होने लगा सन् 1935 ई॰ में कैम्ब्रिज तथा येल विश्वविद्यालयों के तत्वाधान में हिमयुगों से सम्बन्धित खोज के लिए कश्मीर घाटी तथा पंजाब की पहाड़ीयों की तलहिटों में कार्य किये गये । अब पुरातत्वज्ञों का ध्यान इस ओर गया कि भारत में मनुष्य का पार्दुभाव कब हुआ । तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व के भारत की एक विकसित सभ्यता के प्रमाण मिल चुके थे । कई विद्वानों ने इस विषय में शौक फरमाने वालों में मद्रास, बडौदा, कुर्नूल, बम्बई तथा पंजाब में महत्वपूर्ण कार्य किये ।

भारतीय पुरातत्व के घटना चक्र में फिर एक मोड़ आया भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के महानिदेशक पद पर 1937 में एक भारतीय सब बहादुर के॰एन॰दीक्षित महोदय नियुक्त हुए । सरकारी क्षेत्र में इस वास्तविकता का अनुभव होने लगा कि भारत का पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग अपनी विशालता के अनुरूप कार्य करने में अब तक सक्षम नहीं हो पाया था । अत: भारत सरकार ने अपनी ओर से पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग को सुधार सम्बन्धी सुझाव देने के लिए तत्कालीन ख्याती प्राप्त पुरातत्वज्ञामर ल्योनार्ड वुली महोदय को अपनी ओर आमन्त्रित किया ।

उन्होंने यह सुझाव दियाकि पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग में महानिदेशक पद के अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति ऐसा नहीं है जो वैज्ञानिक विधियों से उत्खनन करा सके अतः उत्खनन का कार्य बहुत सीमित कर दिया गया ।

उन्हीं दिनों एक और खास बात हुई कि शिक्षण संस्थाओं ने भी इस ओर ध्यान देना बन्द कर दिया । इसमें सबसे पहले पूरा डिक्की कालेज प्रकाश में आया यहां के इतिहास तथा भाषा विज्ञान के एक अध्यापक ने पुरातत्त्व के महानिदेशक के समक्ष खोज की एक योजना का प्रारूप रखा । इस प्राध्यापक को पूना जिले में कुछ महाशय मिले थे । अब तक इस ओर ध्यान नहीं दिया गया था । परन्तु दीक्षित महोदय ने इस खोज के महत्व को समझा इसका लाभ यह हुआ कि और भी धीरे - धीरे इस प्रकार के पुरातत्विक कार्यों की स्पष्ट रूपरेखा उभर कर सामने आयी । डेक्कन कालेज और गुजरात शोध संस्था के साथ तो पुरातत्व सर्वेक्षण ने सहयोग किया है । कलकत्ता विश्वविद्यालय को भी उसी वर्ष बानगढ़ के उत्खनन की अनुमति प्रदान हो गयी ।

अब तक यद्यपि भारतीय पुरातत्व का बहुत अधिक विकास हो गया था । फिर भी भारतीय पुरातत्व को एक जबर्दस्त मोड़ देने की आवश्यकता थी यह तब हो सका जब मार्टिमर ह्वीलर महोदय को 1944 ई॰ में पुरातत्व सर्वेक्षण का महानिदेशक नियुक्त किया गया । ह्वीलर महोदय वैज्ञानिक उत्खनन के मजे हुएपुरातत्वज्ञ थे । डा॰ सकालिमा इनके विषय में लिखते हैं कि, "इन्हें पुरातत्व के सैद्धान्तिक तथा व्यवहारिक पक्षों का, पुरातात्विक कार्यों के अनुभव का सैनिक अनुशासन और नियोजन सम्बन्धि सूझबूझ का अद्भुत समन्वय था ।" उन्होंने पुरातत्व का भार सम्भालते ही समझ लिया कि भारतिय पुरातत्व का सन्तुलित विकास नहीं हो पाया था । ह्वीलर महोदय ने दक्षिण भारत में जो उत्खनन किये उसके आधार पर उस क्षेत्र के इतिहास के तिथी क्रम निर्धारण हेतू 50 ई॰ सन निर्धारित किया । संस्कृतियों के विकास की विभिन्न अवस्थाओं के क्रम निर्धारण में ह्वीलर महोदय से पूर्व कोई कार्य नहीं किया गया था । ह्वीलर महोदय ने भारतीय इतिहास की इस महती त्रुटी को दूर करने का सफल प्रयास किया । उन्होंने दक्षिण भारत में बिखरी सैकड़ों महाश्य समाधियां जिनको भारतीय इतिहास के ढाचे में कोई निश्चित स्थान नहीं मिला था , उनका इस ढंग से उत्खनन करने का प्रयास किया

कि जिन वस्तुओं की तिथी ज्ञात थी उनसे उन्हें सम्बन्धकरना सम्भव हो पाता । पाडिचेरी में रोम वाली मृद्‌थान्ड़ो को देखकर ह्वीलर महोदय ने अरिकामेड्‌ का उत्खनन किया जिससे प्रथम शताब्दी ई॰ सन में भारत रोम व्यापार के अकाटम प्रमाण उपलब्ध हुए उन्होंने ब्रहमागिरी और चन्द्रवल्ली का भी उत्खनन कराया इन उत्खननों से दक्षिण ,पश्चिम और दक्षिण पूर्व की भारत की एक मोटामोटी संस्कृति क्रम निर्धारित करना सम्भव हुआ । ह्वीलर महोदय की एक देन महत्वपूर्ण है कि उन्होंने विश्वविद्यालयों के छात्रों को पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा किये जा रहे उत्खननों में भाग लेकर प्रशिक्षण प्राप्त करने का अवसर प्रदान किया । तक्षशिला, अरिकामिड्‌ ब्रहागिरी के उत्खनन शिवरों में प्रशिक्षण के लिए विद्यार्थियों को भेजने के लिए विश्वविद्यालयों से लिखित आग्रह किये थे । विद्यार्थीयों के प्रशिक्षण के लिए उन्होंने आर्थिक सहायता भी दी ।

ह्वीलर महोदय को पुरातत्व का जनक माना जाता है । क्योंकि उनसे पूर्व भारत में जो उत्खनन कराये थे उनको पूर्णतया वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता ।

## स्वाधीन भारत में पुरातत्व विकास

स्वतन्त्रता के पश्चात भारतीय पुरातत्व ने जो प्रगति की वह उल्लेखनीय है। इस समय भारतीय पुरातत्वज्ञ विशिष्ट समस्याओं के समाधान की दिशा में कार्यरत रहे और उन्हें इसमें सफलता भी मिली इनमें कुछ समस्याएं देश विभाजन से उत्पन्न हुईं और कुछ इससे पहले से विद्यमान थी जिनको हल करने के प्रयास भी जारी रहे यद्यपि काम इतनी तेजी से नहीं चल रहा था। देश विभाजन के उपरान्त एक सबसे बड़ी परेशानी यह हुई कि सिन्धु घाटी की सभ्यता के सभी प्रमुख स्थान भारत में न रहे सोहन संस्कृति के स्थल भी पाकिस्तान में चले गये सैन्धव सभ्यता के अन्त और एतिहास काल के प्रारम्भ के बीच की कड़ी का ज्ञान नहीं होने से इसे अन्धकार युग की संज्ञा दी गयी परन्तु भारतीय पुरातत्वज्ञों ने इस समस्या के समाधान को अपने कार्य में प्रमुख स्थान दिया। इस प्रसंग में सम्पन्न किये गये पुरातात्विक अन्वेषणों तथा उत्खननों द्वारा न केवल विभाजन जन्य उपयुक्त धोह की पूर्ती करना ही सम्भव हुआ अपितु इस सम्बन्ध में हमारे ज्ञान को पूर्वापेक्षा अधिक व्यापक एवं समृद्ध करने तथा बहुत हद तक अन्धकार युग की समस्या के समाधान की दिशा में भी सफलता मिली। स्वाधीन भारत में प्रागैतिहसीक काल के विषय में बहुत अधिक पता चल सका इन्होंने प्रागैतिहासिक

काल के पते लगाने के लिए अनेक नदियों का उत्खनन कराया ये नदियां थी - लिदर नदी ﴾कश्मीर﴿, व्यास, बन गंगा, सिरसा, सोहन ﴾पंजाब﴿ यमुना, बेलन ﴾उ०प्र०﴿ सुवर्ण रेखा, कोयल, शंख ﴾बिहार﴿,रोंग्रम ﴾आसाम﴿,गंधेश्वरी ﴾पं० बंगाल﴿, ब्रह्माणी ﴾उड़ीसा﴿, कृष्णा ﴾आंध्र प्रदेश कर्नाटक﴿, तुंगभद्रा ﴾कर्नाटक﴿ ताप्ती,प्रवर - गोदावरी ﴾महाराष्ट्र﴿, साबरमती, माही ﴾गुजरात﴿ भद्री ﴾सौराष्ट्र﴿,भुखी﴾कच्छ﴿, चम्बल ﴾राजस्थान - मध्यप्रदेश﴿, सोन, नर्मदा ﴾म०प्र०﴿ बेतवा ﴾म०प्र०-उ०प्र०﴿, लुनी, बनास ﴾राजस्थान﴿ इत्यादि । इन नदियों के उत्खनन से प्रागैतिहासिक काल से सम्बन्धित अनेक अवशेष उपलब्ध हुए जिससे कि प्रागैतिहासिक काल का ज्ञान सम्भव हुआ ।

सैंधव तथा इतिहास पूर्व का काल ज्ञात करने के लिए यद्यपि पुरातत्वज्ञों के सामने अनेक परेशानियां आयी क्योंकि सिन्धु सभ्यता या हड़प्पा संस्कृति के सभी स्थान पाकिस्तान में पड़ गये अत: इस कमी को पुरा करने के लिए विशेष ध्यान दिया गया । अब अनेक जगह की उत्खनन के उपरान्त वहां की उपलब्ध सामग्री को सिन्धु सभ्यता से मिलाया गया । इस प्रकार भारत में अनेक जगहों पर सिन्धु सभ्यता के अवशेष प्राप्त हुए अब इस सभ्यता का विस्तार पश्चिम में

बलोचिस्तान तथा पंजाब में रोपड़, राजस्थान में कालीबंगा गुजरात में लोथल तथा गंगा की घाटी में कौशाम्बी तक माना जाने लगा । इस प्रकार स्वाधीन भारत में पुरातत्व का बहुत अधिक विकास हुआ । भारत के अंधकार युग की समस्या का समाधान किया गया और भारत में अनेक स्थानों पर पुरातत्विक महत्व के इतिहास कालीन स्थलों के भी समुचित उत्खनन किये गये जिनसे उपलब्ध कुछ साक्ष्य बड़े महत्वपूर्ण हैं । उत्तर प्रदेश, बंगाल, बिहार, उड़ीसा और मध्य प्रदेश के जिन पूर्वी इतिहास कालीन स्थानों का उत्खनन किया गया उनमे प्रमुख हैं । कौशाम्बी ( जिला इलाहाबाद ), राजघाट ( वाराणसी ), जगत ग्राम ( कालसी के पास जिला देहरादून ), श्रावस्ती, पिप्रहवा ( जि॰ गोरखपुर ), वैशाली ( पटना ), कुम्हार ( पटना ), राजगीर ( जि॰पटना ), उर्गतिवक, चम्पा ( भागलपुर ) चन्द्रकेतुगढ़ ( जि॰चौबीस परगना ), तामलुक (जि॰ मिदनापुर ), बाणगढ़, शिशुपालगढ़ ( जि॰पुरी ), रत्नागिरी ( जि॰कटक ), उज्जैन इत्यादि । कौशाम्बी में एक किले के आकार का महल मिला जिसकी लम्बाई एवं चौड़ाई क्रमश: 315 x 150 मीटर थी। उत्खनक ने इसकी तिथी 600 ई॰पूर्व निर्धारित की और इसे वत्स राज उदमन का प्रसाद माना । इस स्थान पर एक भगवान बुद्ध का अभिलेख मिला जिससे भगवान बुद्ध के कौशाम्बी जाने और वहां घोषिता

राम में ठहरने का उल्लेख मिलता है । तीन वर्ग किलोमीटर में फैला यहाँ का रक्षा प्राचीर जो अभी भी तेरह मीटर से अधिक ऊँचा है । अपनी विशेषताओं के कारण बड़ा महत्वपूर्ण है । लगभग 75 ई॰ पूर्व में निर्मित उज्जैन के रक्षा प्राचीर से संलग्न परिखा पायी गयी वैशाली के उत्खनन में जो स्तूप मिला उसका पुरातात्विक दृष्टिकोण से बड़ा महत्व है । मूल स्तूप का निर्माण लिच्छवीयों ने भगवान बुद्ध के पवित्र अस्थि अवशेष पर किया था । जिसका उत्तर काल में चार बार विस्तार किया गया पिप्रहवा के उत्खनन से इस बात की पुष्टि हुई कि यहाँ पर प्राचीन कपिलवस्तु नगर बसा हुआ था । प्रथम शताब्दी के विहार के अवशेष में उपलब्ध अभिलेख युक्त मुहरो से ज्ञात हुआ कि कनिष्क ने यहाँ विहार निर्माण कराया था

इन सभी उपलब्धीयों के साथ - साथ स्वाधीन भारत ने पुरातत्व के प्रति देशवासियों की अभिरूची उत्पन्न करने में भी सफलता प्राप्त की ह्वीलर महोदय ने विश्वविद्यालय के छात्रों को पुरातत्व सर्वेक्षण के उत्खनन शिवरों में प्रशिक्षण प्राप्त किया था । परन्तु स्वतन्त्र भारत में अनेक संस्थाओं द्वारा पुरातत्व का कार्य होने लगा । स्वाधीन भारत में विश्वविद्यालय स्तर पर इस विषय के अध्यापन को महत्व प्रदान किया गया । तदनुसार केन्द्रीय विश्वविद्यालय अनुदान आयोग

के प्रयास से देश के अनेक विश्वविद्यालयों मेंप्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति के महत्वपूर्ण अंग के रूप में पुरातत्व के अध्यापन की शुरुआत हुई। पुरातत्व के अध्यापन की शुरुआत हुई अनिवार्य होने से प्रशिक्षित पुरातत्वज्ञों की संख्या में तेजी से वृद्धि होने लगीव्यवहारिक प्रशिक्षण हेतु सर्वेक्षण और उत्खनन किये जाने से अनेक पुरातात्विक स्थलों का पता लगाने के कार्य को प्रोत्साहन मिला और पुरातत्व सम्बन्धी अभियान की वृद्धि में तीव्रता आयी । भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण ने भी इस दिशा में ध्यान दिया, फलस्वरूप इन्डियन स्कूल आफ आर्कीयोलोजी का जन्म हुआजिसके तत्वाधान मेंपुरातत्व विषय का डिप्लोमा पाठ्यक्रम चलाया गया । विभिन्न राज्यों में पुरातत्व निदेशालय की स्थापना से सर्वेक्षण, संरक्षण एवं उत्खनन के कार्यों को और आगे बढ़ाया गया और जगह - जगह पर पुरातात्विक संग्रहालय खोले गये । अब विश्वविद्यालय अनुदान आयोग स्नातक स्तर पर पुरातत्व का एक त्रिवर्षीय विषय चलाया है । जोकुछ विश्वविद्यालयों में चलाया जा रहा है ।

# Fourth Chapter

# مضمون چہارم

१- पुरातत्व और इतिहास

२- पुरातत्व और प्राचीन कलात्मक वस्तुएं

३- पुरातत्व और सामाजिक वातावरण

# Fourth Chapter

# مضمون چہارم

1- पुरातत्व और इतिहास

2- पुरातत्व और प्राचीन कला - व वास्तु

3- पुरातत्व और सामाजिक वातावरण

## पुरातत्व का अन्य विषयों से सम्बन्ध

**पुरातत्व और इतिहास :-** इतिहास तो मानव जन्म ही प्रारम्भ हो जाता है अर्थात मानव सभ्यता के विकास की कहानी ही इतिहास कहलाती है । परन्तु प्रमाणिक साधनों की कमी के कारण प्राचीन इतिहास का क्रमबद्ध एवं निश्चित ज्ञान प्राप्त करना कठिन है । और इस कमी को पुरातत्व विज्ञान कुछ हद तक पुरा करता है । प्रत्येक देश में इतिहासकार अपनी उन सूचनाओं के लिए पुरातत्व पर आश्रित रहते हैं, जहां कि वे पुन: अतीत में जा नहीं सकते और उस काल का इतिहास लिखना चाहते हैं । किसी भी युग का इतिहास लिखने के लिए इतिहास कार को लिखित प्रमाणों की आवश्यकता पड़ती है । और इसके लिए वह प्रचीन ग्रन्थ , अभिलेख पत्र, वसियत नामें एवं अन्य साहित्यों का सहारा लेता है । परन्तु इतिहास का एक ऐसा युग भी होता है जिसके लिए यह सब सामग्री नहीं मिल पाती या उस युग का इतिहास लिखने के लिए हमारे पास कोई ठोस प्रमाण नहीं होते । वह युग प्रगैतिहासिक एवं आद्यैतिहासिक युग होता है । इन कालों का पता लगाने के लिए इतिहासकार पुरातत्व का सहारा लेता है । प्रागैतिहासिक काल मानव सभ्यता का वह युग था जब मनुष्य लेखन शैली नहीं

जानता था और आद्यैतिहासिक काल मानव सभ्यता के विकास का वह युग था जब मनुष्यलेखन शैली तो जानता था परन्तु साहित्य का विकास न होने के कारण उस युग का ऐसा कोई लिखित सूत्र नहीं मिलता जिसे एतिहासिक प्रमाण माना जाए। मानव सभ्यता के विकास के इन दोनों युगों में पनपने वाली विभिन्न संस्कृतियों का विवरण प्रस्तुत करना पुरातत्व का विषय है। पुरातत्व उन मानव संस्कृतियों का अध्ययन करता है जिसके लिए केवल वे पुरावशेष प्राप्त होते हैं जिनको मानव प्रयोग में लाया। प्रसिद्ध पुरातत्व वेवता वाइल्ड के अनुसार - "पुरातत्व भौतिक जगत में घटित उन सभी परिवर्तनों का अध्ययन करता हैजिनका कर्ता मनुष्य रहा है।" मनुष्य के आदि कालीन कार्य कलापों के प्रमाण स्वरूप प्राचीन वस्तुओं के जो अवशेष उपलब्ध हैं उन्हें वाइल्ड महोदय ने आर्टिफैक्ट कहा है। इन्हें दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है - 1. चल अवशेष, 2. अचल अवशेष। अश्मोपकरण, मृदभांड, शस्त्र - अस्त्र, आभूषण, मूर्तियाआदि जिन्हें एक जगह से दूसरी जगह बदला जा सकता है चल अवशेष कहलाती है। परन्तु, मंदिर, किले, नहरें, कब्र आदि स्थानान्तरित नहीं किये जा सकते हैं ये अचल अवशेष की श्रेणी में आते हैं। इन्हीं प्राचीन अवशेषों के आधार पर पुरातत्व वेक्ताइतिहास लिखता है।

उपरोक्त विवरणों से यह स्पष्ट हो जाता है पुरातत्व मनुष्य के अतीत की व्याख्या उन अवशेषों के आधार पर करता है जोइस धरती के गर्भ में संचित मिलते हैं। पुरातत्व कोलक्ष्य केवल प्राचीन अवशेषों का अध्ययन न होकर, उनका अपनी उद्देश्य - पूर्ति का साधन बनाना है। प्राचीन मानव जिस अवस्था में जीवन मापन करता था, सोचता था, कार्यरत रहता था, उसको सभी प्रकार से मूर्तरूप प्रदान करना ही पुरातात्विक अध्ययन काउद्देश्य है। वह अतीत के गर्भ में लुप्त संस्कृतियों के निर्माताओं के जीवन के विभिन्न पहलुओं जैसे - रहन - सहन, खान - पान, सामाजिक जीवन, धार्मिक मान्यतायें इत्यादि का यथासाध्य सही विवरण प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। इसके लिए पुरातत्व वेक्ता को सही उत्खनन का सहारा लेना पड़ता है। आज उत्खनन के बिना पुरातत्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती। पृथ्वी के गर्भ में पड़ी सभ्यता को प्रकाश में लाने के लिए उत्खनन ही एकमात्र साधन है। उत्खनन के माध्यम से जब अतीत के ग्रामों तथा नगरों को नवजीवन प्रदान किया जाता है तो वे अपने उद्भव, उत्थान तथा पतन की कहानीयां सुनाने लगते हैं। डा॰ भगवत शरण उपाध्याय लिखते हैं- "एक दिन अगस्त की 27 तारीख थी और ईसा का 79वां वर्षथा। लोग बाजारों में खरीद - फरोख्त कर रहे थे। तब

लोगों ने देखा कि कोई गड़गड़ाहट हो रही है । इतने ही थोड़े समय में सोर नगर के ऊपर कोई चीज पाउडर की तरह उन पर गिर रही है । वे कुछ न समझ सके, धीरे - धीरे और आवाज बढने लगी । थोड़ी देर के बाद उन्होंने देखा कि आकाश में उड़ते पक्षी झुलस - झुलस कर नीचे गिरने लगे हैं । धीरे - धीरे गर्मी बढ़ने लगी तथा वहां पर उपस्थित लोगों के बदन जलने लगे फिर अंगारे बरसने लगे । यह सब घटना हरकुलिनियम और पोपेइ नगर के समीप हो रही थी थोड़ी देर बाद लोगों ने देखा कि पाम्पेइ नगर में जमीन से लावा निकलकर बह रहा है । एसा लगने लगा मानों जमीन एवं आसमान मिल गए हों । इसी तरह हरकुलिनियम में भी अंगारे बरसने लगे और वह पूर्ण रूप से अंगारों से ढक गया । लोगों को घरों में भी चैन नहीं मिला और बाहर भी बेचैनी महसूस होने लगी । इस प्रकार से सभी मकान लावा और अंगारों से भर गये । इसका 1748 ई० में उत्खनन कराया गया जहां पर इसके गौरवशाली होने के अनेक प्रमाण उपलब्ध हुए । अब तक ज्ञात संसार के प्राचीनतम नगर का नाम जेरिको था इसका पता उत्खनन के द्वारा ही लग सका । जेरूसलम के निकट जेरिको नामक एक शहर है । यह नगर सभ्यताओं का केन्द्र रहा और इसका सुदीर्घ कालीन इतिहास बड़ा ही रोमांचक तथा रोचक है । मैसोपोटामिया के प्राचीन नगर "उर" का आज जो अत्यन्त रोचक एतिहासिक विवरण सुलभ है ।

- 42 -

उसका श्रेय प्रसिद्धपुरातत्व वेक्ता सर ल्योनार्ड वुली को है । जिन्होंने उस स्थान का उत्खनन कराया । तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व के भारत, मिश्र, इसरामल तथा मैसोपोटामिया की समृद्धसभ्यताओं के वितरणों का प्रस्तुतीकरण तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धों का मूल्यांकन उत्खनन द्वारा उपलब्ध सामग्री के आधार पर ही संभव हुआ । जर्मनी के पुरातत्व वेक्ता एवं पुरातत्व के जनक श्लीमान महोदय ने कवि होमर के महाकाव्य इलियड और ओडिसी की कहानी के अस्तीत्व को सत्य प्रमाणित किया और ट्राय नगरी की खोज की । भारत की समृद्ध सिंधु घाटी सभ्यता के विषय में हमें आज जो ज्ञान उपलब्ध है । वह भी पुरातत्व की देन है इस सभ्यता के विषय में कुछ वर्ष पूर्व तक हड़प्पा, मोहनजोदारो, चहुंदारो इत्यादि स्थानों के उत्खनन से जो ज्ञान प्राप्त हुआ था उसकी तुलना में आज हम बहुत अधिक जानते हैं । हाल के वर्षों में अनेक स्थानों के उत्खननों से सिंधु घाटी सभ्यता के प्रचुर अवशेष उपलब्ध हुए हैं । इस सभ्यता के भारतीय स्थलों में लोथल सुरकोतदा, कालीबगां और बनावली विशेष महत्वपूर्ण हैं । अब इस सभ्यता के उदभव विकास और अन्त के विषय में हमारा ज्ञान बहुत अधिक बढ़ गया है । देश के विभिन्न हिस्सों में स्वतन्त्रता प्राप्ती के बाद जो उत्खनन सम्पन्न किये गये और किये जा रहे हैं उनसे भारतीय परागएतिहासिक एवं आद्यतिहासिक युगों की अधूरी जानकारी दिन बदिन बढ़ती जा रही है । कई एतिहासिक तथा कालक्रम

सम्बन्धी समस्याओं का समाधान करना भी सम्भव हो गया है । जैसे दक्षिण भारत में अरिकामेड तथा ब्रह्मगिरी नामक स्थानों के उत्खनन से प्रथम शताब्दी ईसा सन में भारत रोम सम्बन्धों के निश्चित प्रमाण ही नहीं मिले अपितु दक्षिण भारत के इतिहास के तिथी क्रम का एक निश्चित आधार भी उपलब्ध हुआ उत्खनन की महत्ता प्रदर्शित करने के लिए उपरोक्त कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये गये उत्खनन ने मानव इतिहास को वास्तव में बहुत अधिक समृद्ध किया है ।

पुरातत्व की दूसरी तकनीकों का उपयोग केवल प्रागैतिहास एवं आद्यातीहास तक ही सीमित नहीं है । वरन कोई भी युग ऐसा नहीं है जिसके लिए पुरातत्व की उपयोगिता नहीं । अन्तर सिर्फ इतना है कि प्रागैतिहास काल के ज्ञान के लिए पुरातत्व को ही एक मात्र साधन माना गया है । परन्तु एतिहासिक काल के लिए पुरातत्व की महत्ता केवल उस अज्ञात विषय के लिए है जिसके सम्बन्ध में लिखित प्रमाण उपलब्ध नहीं है । जैसे एतिहासिक युग का कोई दुर्ग अथवा नगर ध्वस्त होकर पृथ्वी के गर्भ में पडा रहा तो उत्खनन द्वारा उसका उद्धार किया जाता है । उसके विषय में एतिहासिक विवरण को पूर्णता प्रदान की जाती है । उदाहरण के लिए उज्जैनी नगरी के प्रचीन दुर्ग का प्राचीर, भगवान बुद्ध के अस्थि अवशेष पर निर्मित वैशाली का स्तूप, अतित वक का पालसेन कालीन स्तूप इत्यादि ।

आर्टिफैक्ट कहलाने वाले पुरावशेषों के अतिरिक्त भी कतिपय अन्य प्रमाणों को पुरातात्विक ज्ञान के लिए उपयोगी माना गया है। जैसे शंख मनुष्य निर्मित नहीं है। परन्तु जो संख फ्रांस के प्रगैतिहास में पाये गये उन्हें महत्त्वपूर्ण पुरातत्व प्रमाण की कोटि में रखा गया। इसका कारण यह है कि फ्रांस में इसकी उपलब्धी से यह प्रमाणीत हुआ कि मनुष्य ने उस संख को उसके उद्‌गम स्थान भूमध्य सागर से अपने आवास तक स्थानान्तरित किया जिससे प्रगैतिहासिक काल में फ्रांस तथा भूमध्य सागर के बीच आवागमन की विद्यमानता प्रमाणित होती है। मनुष्य के प्रमाण को भी महत्त्वपूर्ण पुरातात्तिक प्रमाण माना जा सकता है। यह कोई अनिवार्य नहीं कि जिस वस्तु का निर्माण मनुष्य ने नहीं किया वह पुरातात्विक प्रमाण की श्रेणी में नहीं आया। महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि कोई भी पुरावशेष किस पुरातात्विक सन्दर्भ में उपलब्ध होता है? यदि कोई प्राचीन अवशेष जिस सन्दर्भ में उपलब्ध होता है। उस पुरावशेष से तत्कालीन मानव समाज का विवरण प्रस्तुत करने में उसकी उपयोगीता सिद्ध होती है। और अगर वह मानव द्वारा नहीं बना है तो फिर भी वह पुरातात्विक प्रमाण माना जायेगा। पुरातत्व के लिए ध्यान रखने की एक महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि जिस काल का विवरण प्रस्तुत करने का वह प्रयास कर रहा है। उस समय उस स्थान की भौगोलिक स्थति क्या थी जैसे भूमी की उर्वता, स्थानीय पशु पक्षियों की मनुष्य के लिए उपयोगिता अथवा उससे

हानि वहाँ बंदरगाहों के उपयुक्त स्थान की विद्यमानता अथवा उनका अभाव एवं मछली मारने की सुविधाओं इत्यादि क्योंकि ये बातें ऐसी हैं जिनके आधार पर किसी क्षेत्र के निवासियों के रहन - सहन और उनके जीवन के आर्थिक पक्ष का अनुमान लगाना सम्भव होता है। प्राकृतिक वातावरण या तो मनुष्य के कार्य विशेष के लिए प्रेरणा दायक या सहायक सिद्ध होता है। परन्तु यह भी सच है कि मनुष्य विपरीत प्राकृतिक वातावरण में समुचित परिवर्तन कर उसे अपने अनुकूल बनाने में सफल हो जाये। कभी - कभी मनुष्य पशु - पक्षियों की कई जातीयों का सफाया कर देता है और उनके स्थान पर नई नस्ल के जानवरों को दूसरे स्थान से लाकर वहाँ आबाद कर देता है। मनुष्य के प्रयास का ही यह परिणाम होता है घनघोर जंगल अथवा घास के लहलहाते मैदान खेतों में बदल दिये जाते हैं। जहाँ पर कभी दलदली जमीन रही हो वहाँ कृषक हल जोतते दिखाई देते हैं। इस प्रकार के जो परिवर्तन होते हैं उनकी व्याख्या पुरातत्व के सामान्य नियमों द्वारा नहीं की जा सकती इसके लिए पुरातत्व भूतत्व विज्ञान, प्राणिशास्त्र, वनस्पति विज्ञान, ऋतु विज्ञान, नृतत्व शास्त्र, भूगोल आदि विज्ञान का सहारा लेना पड़ता है।

उपर इस बात का उल्लेख किया गया है कि इतिहास और पुरातत्व में अन्तर है इन दोनों विषयों के बीच जो अन्तर सामने आते हैं उनका विवरण निम्न वर्णित है :-

1. इतिहास के अध्ययन का काल सीमित है अर्थात लिखित प्रमाण की प्राप्ती से पूर्व का काल इतिहास के कार्य क्षेत्र की परिधी से बाहर पड़ता है। अर्थात इतिहास के कार्यकाल में लिखित प्रमाणों का होना अति आवश्यक है। भारत का निर्विवाद एतिहासिक युग भगवान बुद्ध के प्रादुभाव काल से आरम्भ होता है। बुद्ध से पूर्व का युग आदितिहासिक युग कहलाता है और उससे पूर्व का काल प्रागैतिहासिक काल कहलाता है। मिश्र तथा मैसोपोटामिया के लिखित प्रमाण अधिक प्राचीन माने गये हैं परन्तु इन देशों का भी एतिहासिक युग पांच सौ वर्षों का ही है। दूसरी ओर पुरातत्व की परिधी में काल की कोई सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती पुरातत्व के अन्दर पृथ्वी के निर्माण से लेकर जीव की उत्पत्ती एवं उससे पूर्व या बाद का काल सभी आता है अर्थात पुरातत्व का कोई निश्चित काल नहीं होता है।

2. इतिहास का अध्ययन उन विषयों पर केन्द्रित हो जाता है। जो किसी सभ्यता के विकास के केन्द्र रहे हों। प्राचीन काल का इतिहास वस्तुत: सभ्यता के केन्द्रों का इतिहास रहा है। प्राचीन भारत में मगध की प्रधानता

थी तो यूरोप में एथेन्स एवं रोम की प्रखरता थी । परन्तु पुरातत्व का प्रमुख लक्ष्य रहता था जनजीवन का अध्ययन प्रस्तुत करना । अतः सम्भवतः के जहां भी और जिस प्रकार के अवशेष उपलब्ध होते हैं । उनका पुरातत्व में समुचित अध्ययन किया जाता है । झोपड़ी के अवशेष हों अथवा आलीशान महल के सभी समान महत्व के माने जायेंगे मानव समाज का यथासंभव सर्वांगीण विवरण प्रस्तुत करने के उद्देश्य से सभी उपलब्ध अवशेषों का समभावेन अध्ययन पुरातत्व में अपेक्षित माना गया है । इसके साथ ही पुरातत्व की विधियों का उपयोग केवल प्रागैतिहासिक युग तक ही सीमित नहीं रखा जाता आवश्यकतानुसार इनका कहीं भी उपयोग किया जा सकता है ।

3. पुरातत्व को इतिहास का पूरक माना गया है । भारत, मिश्र, इजराइल, चीन, मैसोपोटामिया, इटली, यूनान, ईरान आदि अनेक देशों के इतिहास को पुरातत्व ने समृद्ध किया है । इन देशों के इतिहास के अनेक स्वर्णिम पृष्ठ पुरातत्व के अभाव में सादे ही रह जाते यह तो पुरातत्व का कमाल है कि लिखित प्रमाणों पर आधारित अधूरे इतिहास को पूर्णत्व प्रदान करने में इतिहासकार को सफलता प्राप्त होती है ।

यद्यपि उपरोक्त बातों सेसाफ जाहिर होता है कि पुरातत्व और इतिहास में अनेक भेद हैं। परन्तु दोनों में लक्ष्य समान है - दोनों का लक्ष्य आदिकाल से लेकर आधुनिक युग पर्यंत्त मानव समाज के विकास की विभिन्न अवस्थाओं का विवरण प्रस्तुत करना है। अन्तर यही है कि दोनों भिन्न - भिन्न श्रोतों से इस काम को सम्पन्न करते हैं। पुरातत्व हमारे पूर्वजों के जीवन से सम्बन्ध पुरावशेषों के आधार पर अतीत का विवरण प्रस्तुत करता है। यही विवरण सदा पूर्ण नहीं हो पाता है। क्योंकि सभी प्रकार की पुरातात्विकवस्तुओं को विनष्ट होने से नहीं बचाया जा सकता। इस कारण पुरातत्व समाज का सर्वांगीण विवरण प्रस्तुत करने में सर्वथा सक्षम नहीं हो पाता है। इसके साथ ही यह बात ध्यान देने की है कि इस विवरण में तथा इतिहास कालीन विवरण में साम्य का अभाव रहता है। इतिहास के कुछ एसे भी युग हैं जिनके पूर्ण विवरण प्रस्तुत करने के लिए पुरातात्वि तथा एतिहासिक दोनों प्रकार के श्रोतों की आवश्यकता पड़ती है। अत: पुरातत्व एवं इतिहास दोनों एक दूसरे के पूरक बन जाते हैं वस्तुत: इतिहास की सभी युगों में पुरातत्व का सहयोग प्राप्त होता है। परन्तु यही बात पुरातत्व के साथ लागू नहीं होती क्योंकि एक युग एसा भी है जहाँ पुरातत्व पूर्णतया आत्म निर्भर हो जाता है। वह है प्रागैतिहासिक काल जिसके ज्ञान के लिए लिखित सामग्री का सर्वथा अभाव है।

पुरातत्व और इतिहास के सम्बन्ध में यह स्पष्ट है कि दोनों अन्योन्याश्रित हैं। सफल पुरातत्वज्ञ बनने के लिए इतिहास का समुचित ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। इतिहासज्ञ ही सफल पुरातत्वज्ञ बन सकता है। पुरातत्व और इतिहास एक दूसरे पर आधारित होते हैं। समस्त एतिहासिक स्थलों का उत्खनन, सर्वेक्षण, संरक्षण एवं परिरक्षण पुरातत्व विभाग द्वारा कराया जाता है अगर हम भी कहें की पुरातत्व इतिहास का जनक है तो कोई गलत नहीं है। क्योंकि पुरातत्व के द्वारा ही इतिहास की जानकारी मिलती है और अनेक एतिहासिक प्रगतिहासिक वस्तुओं को आगे के लिए भी पुरातत्व द्वारा ही
102701
सुरक्षित रखा जाता है। पुरातत्वज्ञ को उत्खनन विधियों से अवगत होना ही पर्याप्त नहीं माना जा सकता। इसमें तिथी निर्धारण तथा एतिहासिक महत्व के अवशेषों की समुचित व्याख्या करने की पूर्ण क्षमता होनी चाहिए। आज के पुरातत्व वेक्ता को अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए अनेक विज्ञानों का सहयोग प्राप्त करना भी अनिवार्य हो जाता है। इसके लिए उसे या तो स्वयं ही पुरातत्व से सम्बन्धीत विज्ञानों का ज्ञाता होना चाहिए या वैज्ञानिकों का सहयोग प्राप्त करना चाहिए। आज के युग में पुरातत्व का बहुत अधिक विकास हो चुका है। अतः अब पुरातत्व, इतिहास की एक साखा मात्र न रह गया है बल्कि

इतिहास ही पुरातत्व की एक साखा बन गया है । पुरातत्व ने इतिहास के क्षेत्र अनेक महत्वपूर्ण कार्य किया पुरातत्व के द्वारा ही भारतीय इतिहास का अन्धकार युग ऐतिहासिक युग में बदल पाया एवं उसके स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध हो पाये आज पुरातत्व की अनेक साखायें इतिहास को सुरक्षित एवं जानकारी प्राप्त करने के लिए कार्य कर रहे जैसे उत्खनन कराना सर्वेक्षण, तिथी निर्धारण, सरंक्षण एवं परिरक्षण आदि उत्खनन के द्वारा अनेक रहस्यमय इतिहास की जानकारी प्राप्त हो पाती है । उत्खनन के ही द्वारा अनेक देशों की प्राचीन सभ्यताओं एवं संस्कृतियों की जानकारी प्राप्त हो सकी । उत्खनन का भारतीय इतिहास में बड़ा महत्त्व है । इसके द्वारा भारत की अत्यन्त गौरवशाली संस्कृति एवं सभ्यता का पता लग पाया यह सभ्यता सिंधु सभ्यता थी । इसी प्रकार अनेक देशों के इतिहास का विवरण भी उत्खनन द्वारा प्राप्त हो सका । उत्खनन के साथ - साथ पुरातत्व का तिथि निर्धारण विषय भी महत्वपूर्ण है । आज तिथी निर्धारण में अनेक भौतिक एवं वैज्ञानिक विधियों का सहारा लिया जा रहा है । तिथी निर्धारण भी इतिहास के ज्ञान में मार्गदर्शक सिद्ध हुआ है । इतिहास के क्षेत्र में पुरातत्व की सबसे महत्वपूर्ण देन सरंक्षण एवं परीक्षण है । अनेक प्राचीन वस्तुएं जो कि इतिहास की जानकारी के लिए महत्वपूर्ण हैं आज अगर

वे सुरक्षित हैं तो यह देन पुरातत्व की है, क्योंकि प्राकृतिक परिवर्तनों के कारण जैसे तापमान का अधिकतम एवं न्यूनतम होने से कुछ वस्तुएं टूट जाती हैं उनको कुछ हद तक सही रखने के लिए पुरातत्व उनको सन्तुलित वातावरण देता है। इसके साथ ही प्रदूषण के द्वारा वस्तुओं का प्राकृतिक रंग खराब हो जाता है उसे भी पुरातात्विक तकनिकों से धुला जाता है और उसे उसकी प्राकृत अवस्था में लाया जाता है इस प्रकार पुरातत्व की देन इतिहास में महत्वपूर्ण है। इतिहास को हम पुरातत्व की एक साखा कह सकते हैं।

## पुरातत्व और प्राचीन कलात्मक वस्तुएं

पुरातत्व का प्राचीन अवशेषों से घनिष्ट सम्बन्ध है । प्राचीन कलात्मक वस्तुओं और पुरातात्विक अवशेषों के सम्बन्धोंको स्पष्ट रूप में समझ लेना चाहिए । यूरोपीय धार्मिक पुर्नजागरण युग तक पुरातत्व तथा कला के इतिहास का भेद स्पष्ट नहीं हो पाया था । उन दिनों कला के विद्वानों का प्रमुख लक्ष्य था यूनान तथा रोम के गौरवमय अतित का विवरण प्रस्तुत करना उनके कलात्मक अवशेषों का अध्ययन करना इस युग के विद्वानों की दृष्टि में प्राचीन सांस्कृतिक कला और पुरातत्व अभिन्न थे । कलाकृतियों, मूर्तियों तथा भवनों की कला के मूल्यांकन को ही वे पुरातत्व समझते थे । परन्तु यह स्थिति उस समय तक बनी रही जब तक पुरातत्व का समुचित विकास नहीं हो पाया था । पुरातत्व के विकास में कलात्मक वस्तुओं के अध्ययन एवं पुरातत्व के सम्बन्धों को स्पष्ट कर दिया। पुरातत्व में कलात्मक वस्तुओं के अध्ययन का महत्व अवश्य है परन्तु पुरातत्वज्ञ अतीत की कलाकृतियों का मूल्यांकन एक कलामर्मज्ञ के दृष्टिकोण से नहीं करता । वह अतीत की सभी कलात्मक वस्तुओं का महत्व उन वस्तुओं के मानव सभ्यता के इतिहास की व्याख्याकी क्षमता में निहित मानता है जो प्राचीन कलावस्तु अपने समय के सम्बन्ध मेंजितनी अधिक सूचना प्रदान करेगी उसका उतना ही अधिक महत्व

होगा । पुरातत्वज्ञ किसी भी कलाकृति का मूल्यांकन उसकी कलात्मक विशिष्टताओं के आधार पर नहीं करता । इस तथ्य को सदा ध्यान में रखना चाहिए कि कोई कलाकृति कितनी भी कलात्मक विशिष्टताओं से परिपूर्ण क्यों न हो वह मानव जीवन के किसी पक्ष के विषय में हमारा ज्ञान सर्वधन करने की क्षमता के अभाव में अपना महत्व खो देती है । पुरातत्वज्ञ का प्राचीन अवशेषों का विवरण सदा निरपेक्ष होता है । प्रौफेसर चाइल्ड महोदय के अनुसार पुरातत्वज्ञ तथा कला के इतिहास वेत्ता के दृष्टिकोणों में मौलिक भेद रहता है । यद्यपि कला के इतिहासकार के अध्ययन की सामग्री भी पुरातात्विक वस्तुएं होती हैं परन्तु उन वस्तुओं के उसके अध्ययन में उस सौंदर्य की प्रधानता होती है । जो कलाकार ने उसे प्रदान किया अर्थात उस कलाकृति का कला पक्षपुनः प्राचीन चित्रों मूर्तियों तथाप्रासादों के अध्ययन में उनके उन सन्दर्भों की उपेक्षा कर दी जाती है । जिनमें उनको उपलब्ध किया गया हो दूसरी ओर पुरातत्वज्ञ उस सन्दभ को ही विशेष महत्वपूर्ण मानता है जिसमें कोई प्राचीन अवशेष मिला हो अर्थात जिस सीमा तक किसी वस्तु में एतिहासिक समस्याओं के समाधान की क्षमता विद्यमान होगी उसकी महत्ता भी उसी अनुपात में आंकी जायेगी । पुरातात्विक प्रमाणों में ऐसी वस्तुओं का अभाव देखा जाता है जिनमें उनका अपना सौन्दर्य हो उनके महत्व का कारण तो वह सन्दर्भ होता है जिसमें वे पाये गये अथवा उनसे सम्बन्ध वे वस्तुएं

- 54 -

होती है जिनके कारण उनके उपयोग के विषय में तथा उनके प्रभोक्ता मनुष्य के सम्बन्ध में हमारी ज्ञान वृद्धि होती है ।

प्रत्येक कलाकृति में विशिष्टता होती है जिसका कला मर्मज्ञ मूल्यांकन करता है । परन्तु दूसरी ओर पुरातत्वज्ञ विभिन्न कलाकृतियों में जो समानता निहीत रहती है उसका मूल्यांकन करता है । युग विशेष के चित्रों, मूर्तियों तथा मन्दिरों में शैली की जो समानताएं उभर आती हैं उनका पुरातत्व के लिए विशेष महत्व होता है क्योंकि उनसे तत्कालीन समाज की विचार धारा की झलक मिलती है । वह कला के उस पक्ष को महत्व प्रदान नहीं करता जो व्यक्तिक होता है । भिन्न - भिन्न कलाकारों की अपनी - अपनी सौन्दर्यानुभूतियों का अध्ययन तो कला विशेष का ही कार्य है । पुरातत्वज्ञ का उद्देश्य मानव समाज के विकास की अभिन्न अवस्थाओं का विवरण प्रस्तुत करना रहता है । अतः इस उद्देश्य की पूर्ति के प प्रयास में जो कलाकृति जितनी अधिक सहायक होगी उसका महत्व उतना ही अधिक होगा ।

प्राचीन कला वस्तुओं को पुरातत्व की देन महत्वपूर्ण है । प्राचीन काल की कुछ कला आकृतियां कई कारणों जैसे अधिकतम एवं न्यूनतम तापमान का जब सही

सन्तुलन नहीं बन पाता तो कुछ पत्थर की कलाकृतियां जैसे मूर्तियां या अन्य अनेक वस्तुएं टूट जाती हैं इनको नष्ट होने से बचाने के लिए पुरातत्व का सहारा लेना पड़ता है। टूटी हुई वस्तु को पुन: जोड़ा जाता है। और दूसरी वस्तुओं की हिफाजत की जाती है।

इसी प्रकार दूसरी कलाकृतियां प्रदूषण एवं अन्य कारणों से अपने वास्तविक रंग में नहीं रह पाती फिर उनकी रासायनिक पदार्थों से धुलाई वगैरह कराकर उन्हें उनके वास्तविक रंग में लाया जाता है।

कुछ कलाकृतियां जैसे कागज या गत्ते की कलाकृतियों को दीमक खा लेती हैं तो उनकी हिफाजत भी पुरातत्व द्वारा की जाती है। इस प्रकार उनको नष्ट होने से बचाया जा सकता है।पुरातत्व और कलावस्तुओं का अच्छा सम्बन्ध होता है।

## पुरातत्व और सामाजिक वातावरण

प्रसिद्ध पुरातत्व वेक्ता वाइल्ड महोदय के अनुसार, "पुरातत्व में मनुष्य के उनक्रियाकलापों तथा उपलब्धीयोंका अध्ययन किया जाता है, जिनका सम्बन्ध समाज से रहा हो।" समाज शास्त्रीयों केअनुसार, "समाज शास्त्र समाज का विज्ञान जिसमें हम सामाजिक जीवन, सामाजिक सम्बन्धों, सामाजिक कार्य तथा समाज के स्वरूप का अध्ययन करते हैं। सामान्यत: समाज शास्त्र को सामाजिक सम्बन्धों का वैज्ञानिक अध्ययन माना गया है। भोजन उपलब्ध करना, संकटों का निवारण करना, तथा शारीरिक शीत ताप नियंत्रित करना अथवा इनमें त्रुटि पूर्ति की क्षमता आदि के विषय में मनुष्य जन्मना अनुभव शून्य रहता है। इन गुणों का विकास सामाजिक वातावरण की देन माना जाता है।

आद्यएतिहासिक युग में मानव असभ्य था वह कच्चा मांस और कन्दमूल खाया करता था, धीरे - धीरे उसकी दशा में परिवर्तन होता गया और उसने अग्नि की खोज की एवं शिकार के लिए अनेक पत्थर के उपकरणों का निर्माण किया। उसके उपरान्त उसने कृषि कार्य सीखा और पशुपालन भी करने लगा। इस प्रकार जब मनुष्य समूह बना कर रहने लगे तो वह खुद ब खुद सभ्य होते चले गये यह देन सब समाज की है। मनुष्य ने जो अपने उपयोग के लिए अनेक प्रकार के उपकरणों का

निर्माण किया था ये ही उपकरण अब उस समय के सामाजिक आर्थिक जीवन की दशा हमें बताते हैं क्योंकि उस समय का कोई लिखित प्रमाण नहीं है और अगर कोई लिपी मिली भी है तो वह पढ़ी नहीं जा सकी, इसलिए ये उपकरण ही इतिहास लेखन के काम आते हैं। वस्तुत: मानव समाज की प्रत्येक पीढ़ी अपने पूर्ववर्ती पीढ़ी के अनुभव से लाभ उठाती रही है। किसी भी मनुष्य में उपकरण निर्माण का ज्ञान जन्म से नहीं पाया जाता। वह ये सब समाज से सीखता है। आदि अश्म कालीन मानव को अबेविलियन अथवा अशूलियन हस्त परशु के निर्माण में निपुणता प्राप्त करने में लाखों वर्ष लग गये थे। आदि मानव ने इस दिशा में अनेकानेक भूलें करते हुए यह ज्ञान प्राप्त किया कि किसी उपकरण का निर्माण किस प्रक्रिया द्वारा किया जाये और कौन - कौन से पत्थर, किस - किस उपकरण के लिए उपयुक्त होंगे। प्रत्येक पूर्व कालीन समाज के अनुभवों का परवर्ती समाज ने लाभ उठाया और इस प्रकार समाज ने प्रगति के चरण बढ़ाए। प्रत्येक उपकरण, जिसके निर्माण में मनुष्य को सफलता मिली, वह उसकी सर्जनात्मक क्रिया का फल था, और वही पुरातात्विक सामग्री बन गया।

- 58 -

# Fifth Chapter

## مضمون پنجم

1- पुरातत्व को भौतिक एवं रसायन विज्ञान की देन

2- पुरातत्व को वनस्पति विज्ञान की देन।

3- पुरातत्व को भूतत्व विज्ञान की देन।

4- पुरातत्व को नृतत्व शास्त्र की देन।

5- पुरातत्व को जीव विज्ञान की देन

# Fifth Chapter

مضمون پنجم

1- पुरातत्व को भौतिक एवं रसायन विज्ञान की देन

2- पुरातत्व को वनस्पति विज्ञान की देन,

3- पुरातत्व को भूतत्व विज्ञान की देन,

4- पुरातत्व को नृतत्व शास्त्र की देन.

5- पुरातत्व को जीव विज्ञान की देन।

## पुरातत्व को अन्य विषयों की देन

पुरातत्व एक ऐसा विषय है जिसके विकास में कई अन्य विषयों का योग रहा है। पुरातत्व को स्थान-स्थान पर दूसरे विषयों का सहारा लेना पड़ता है ये विषय है- भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, प्राणि शास्त्र, भूतत्व विज्ञान, नृतत्व शास्त्र, वनस्पति विज्ञान आदि इन विषयों के द्वारा ही पुरातत्व अपने कार्यों में सफल हो पाता है। इन्ही के द्वारा वह वस्तुओं का पता लगता है। इनका विस्तृत विवरण निम्नलिखित प्रकार है।

### भौतिक एवं रसायन विज्ञान का पुरातत्व में योगदान:-

आज रसायन शास्त्र और भौतिक विज्ञान का पुरातत्व में विशेष महत्व हो गया है। जब पुरातत्व वेत्ता का उत्खनन में प्राचीन वस्तुओं की प्राप्ति होती है। तो उन वस्तुओं को नष्ट होने से बचाने के लिए विशिष्ट रसायनिक प्रक्रियाओं द्वारा संरक्षित करना आवश्यक हो जाता है। धातु निर्मित उपकरणों की सफाई के लिए भी रासायनिक प्रक्रियाओं का सहारा लिया जाता है। अगर उत्खनन कर्ता को सिक्के या मूर्ति मिल जाये तो उनकी सफाई एवं उनके संरक्षण के लिए विशिष्ट रासायनिक प्रक्रिया को अपनाना

पड़ेगा । सरक्षण का पुरातत्व में बड़ा महत्व है । प्राचीन अवशेष चाहे वे किसी भी पदार्थ के बने हो, मिट्टी के हों या पत्थर के हों अथवा किसी धातु के बने हों, सिक्के के समान छोटे हों या मन्दिर के समान विशाल सभी का संरक्षण जरूरी होता है । अत: पुरातत्व में संरक्षण सम्बन्धी रसायन शास्त्र की शिक्षा के लिए विशेष प्रबन्ध किये जाते हैं । वस्तुओं के संरक्षण के विषय में हम आगे बात करेंगे । पुरातत्वज्ञ रसायन शास्त्र एवं भौतिक विज्ञान का सरक्षण के अलावा कई और अन्य उपयोग करता है । जैसे तिथी निर्धारण के लिए मिट्टी और हड्डी का रासायनिक विश्लेषण था । आज तिथी निर्धारण में भौतिक - रसायनिक विधियों का बड़ा महत्व है ।

यद्यपि तिथी निर्धारण की परम्परागत सभी विधियों की परिस्थति के अनुसार आवस्यकता पड़ती है । परन्तु आज इसके लिए मुख्यत: वैज्ञानिक साधनों का सहारा लिया जाता है और इसमें अब अनेक जटिलताएं आ गयी हैं । अब यह साधारण विषय नहीं रहा । परन्तु विज्ञान के विकास के पूर्व यूरोप में इसे एक अति सामान्य विषय माना जाता था । इसाई धर्म गुरूओं के अनुसार इस संसार पर मानव अस्तित्व की प्राचीनता 4004 वर्ष ई॰ पूर्व से अधिक नहीं थी यूरोप में आर्क विशाप यशर महोदय की मान्यता का बोलबाला था कि ईश्वर ने

ईसा से 4004 वर्ष पूर्व सृष्टि की रचना की । बहुत दिनों तक इतिहासवेक्ता 4241 ई॰ पूर्व को ही इतिहास की प्राचीन तिथी मानते रहे । क्योंकि मिश्र के क्रमबद्ध इतिहास का विवरण चतुर्थ शताब्दी की अन्तिम शताब्दी तक प्रस्तुत करना सम्भव हो सका । अतः इस मत का प्रतिपादन किया गया कि उस देश में सर्वप्रथम 4241 ई॰ पूर्व में पंचांग बना समय की इसी सीमित अवधि में मानव सभ्यता के विकास की विभिन्न कड़ियों को क्रमबद्ध जोड़ने की चेष्टा बहुत दिनों तक की जाती रही । परन्तु जब विज्ञान ने ऐसी सामग्री को विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत किया जिनके विकास की प्रक्रिया की व्याख्या समय की इस अल्प अवधि में करना सम्भव नहीं हो सका तो इस विषय पर रूढ़ीगत धारणाओं का परित्याग करना पड़ा । वैज्ञानिकों एवं पुरातत्वज्ञों ने विज्ञान की प्रगति के साथ - साथ तिथी निर्धारण की विधियों को निरन्तर पूर्णता प्रदान करने का प्रयास किया और विगत 35 वर्षों की अवधि में अनेक वैज्ञानिक विधियों का विकास किया गया जिसमें प्रमुख है फ्लोरिन परिक्षण, वृक्ष वलय विश्लेषण, अनुवर्ष स्तरोम विश्लेषण, पराग विश्लेषण, रेडियो कार्बन 14 ( $C_{14}$ ), पोटैशियम आर्गन, उष्मक दीप्त तथा पुराचुम्बकत्व विद्या । अतः कुछ वैज्ञानिक तिथी विधियां निम्नवर्णित हैं ।

कार्बन 14 (C14) विधी :-

सन् 1949 ई. में शिकागो विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डब्लू. एफ. लिब्बि ने पुरातात्विक अवशेषों में विद्यमान रेड़ियो सक्रिय कार्बन के आधार पर तिथी निर्धारण की विधी का विकास किया उन्होंने इसकी परिकल्पना 1946 ई. में की थी और इसके विषय में उनका प्रयोग 1947 ई. में प्रकाशित हुआ। और तब से अब तक इस विधी में निरन्तर सुधार होता रहा है। जिसके परिणाम स्वरूप शुरूआत में जो खामियां थी उन्हें दूर कर दिया गया है।

कार्बन 14 क्या है इस प्रश्न का संक्षिप्त उत्तर इस प्रकार होगा - पृथ्वी पृथ्वी के बाह्य वायुमंडीलीय स्तरों पर ब्रह्माण्ड रश्मियां लगातार प्रहार करती रहती हैं। जब वे वायुमंडल में प्रवेश करती हैं तो उसके परिणाम स्वरूप विभिन्न शक्तियों के न्यूट्रानों का निर्माण होता है। वायुमंडल आक्सीजन और नाइट्रोजन का मिश्रण है। प्रयोगों से यह प्रमाणित हुआ है कि जहां आक्सीजन निष्क्रय रहता है वही न्यूट्रानों के सम्पर्क से नाइट्रोजन मे अनेक प्रकार की प्रतिक्रियाए हो हो जाती हैं, जिसमें कार्बन 14 का पादुर्भाव प्रमुख माना गया है। कार्बन 14 एक विशिष्ट नाइट्रोजनआइसोटोप का परिवर्तन रूप है। आकाश की

प्रयोगशाला में इन नवनिर्मित कार्बन परमाणुओं का रेडियो कार्बन डाइ आक्साइड में आक्सीकरण हो जाता है । इसे वनस्पतियां अन्य गैसों के संग स्वाभाविक रूप में आत्मसात कर लेती है । तत्पश्चात न केवल शाकाहारी पशु - पक्षी वनस्पतियों को खाकर अपितु जो मांसाहारी हैं वे भी पशु - पक्षीयों का भक्षण कर रेड़ियो कार्बन आत्मसात कर लेते हैं । इस प्रकार सभी प्राणी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी न किसी रूप में कार्बन 14 को आत्मसात करके रेडियो सक्रिय बनजाते हैं ।

सामान्य कार्बन जो वायुमंड़ल में सर्वत्र विद्यमान रहता है उसमें 6 प्रोटान और 6 न्यूट्रानों का योग होता है । इसे कार्बन 12 कहा गया है। इस कार्बन में रेडियो सक्रियता नहीं होती हैं । परन्तु कार्बन 12 रेडियो सक्रिय है । कार्बन 14, कार्बन 12 के साथ वायुमंडल के आक्सीजन में मिल जाता है । अनुमान लगाया गया है कि कार्बन 14 की मात्रा पृथ्वी में लगभग 80 टन है । ब्रह्माण्ड विकिरण के माध्यम से प्रतिवर्ष 20 पौंड़ रेडियो कार्बन उत्पन्न होता है । प्रो. लिब्बी ने गणना करके इसका पता लगाया कि कार्बन 14 की विद्यमानता सभी प्राणीयों में समान होती है । पृथ्वी के द्वार्बन

के कारण वायुमंडल में इसका समान वितरण होता है और प्राणीयों द्वारा इसका अवशोषण समान होता है । सभी प्राणी निश्चित अनुपात में कार्बन 12 और कार्बन 14 को आत्मसात करते हैं । कार्बन 14 के नवीन परमाणु निरन्तर क्षति पूर्ति का कार्य करते रहते हैं । यह प्रक्रिया वायु के माध्यम से सम्पन्न होती है। यह तो स्पष्ट हो गया कि सभी प्राणीयों में कार्बन 14 और कार्बन 12 विद्यमान है । परन्तु जब कोई व्यक्ति मर जाता है तो उसमें कार्बन 14 के अवशोषण की प्रक्रिया का अन्त हो जाता है और उसके बाद जिस प्रक्रिया का आरम्भ होता है वह कार्बनाय के विघटन की होती है । प्रो॰ लिब्बी की गणना के अनुसार 5568 $\pm$ 30 वर्षों में कार्बन 14 की मात्रा आधी हो जाती हैकुछ विद्वानों ने कार्बन 14 का आधा जीवन 5570 $\pm$ 30 वर्षों का माना है और कुछ लोग 5730 $\pm$ 40 वर्षों का मानते हैं । एटकिन महोदय 5000 वर्षों का अर्ध जीवन मानते हैं । उनके अनुसार 80 वर्षों में कार्बन 14 का एक प्रतिशत विघटन होता है । कार्बन 14 के अर्धजीवन के सिद्धान्त के अनुसार मरने के पश्चात जितने वर्षों में आधा हो जाता है । पुन: उतने ही वर्षों में अविश्टांश का आधा रह जाता है और यह प्रक्रिया सम्पूर्ण कार्बन 14 की अर्धसमाप्ती तक चलती रहती है । इस प्रकार यदि कार्बन 14 काअर्धजीवन यदि 5130 मान लें तो

11460 वर्षों में उसका चतुर्थांस 17190 वर्षों में अष्टभाश 22920 वर्षों में सोलहवां भाग और लगभग 70000 वर्षों के बाद कुछ भी शेष नहीं रहेगा । कार्बन 14 के उपयुक्त विघटन के आधार पर ही तिथी निर्धारित की जाती है । अत: उपयुक्त प्राचीन वस्तु में विद्यमान सक्रियता से उसका अन्तर निकाला जाता है । इसके लिए प्रति मिनट प्रति ग्राम परीक्षण पदार्थ द्वारा नि:शर्त बीटा किरण की गणना करके अर्धजीवन निर्धारित की जाती है । आर्वाचीन कार्बन 14 की विकरण गति लगभग 15 CPM / g होती है । परन्तु 5700 वर्ष प्राचीन कार्बन 14 की 7.5 CPM/g विघटन की प्रक्रिया में कार्बन 14, बीटा विकरण करता हुआ N 14 में बदल जाता है । इसका सूत्र है - $C^{14} = B^{-} + N^{14+}$ सबसे अधिक विश्वसनीय कार्बन 14 परीक्षण विधी में परीक्षणीय वस्तु की सर्वप्रथम सफाई की जाती है । तत्पश्चात उसे कार्बन डाई आक्साइड { $CO_2$ } एसिटाइलीन $C_2H_2$ अथवा मैथेन {CH} में परिवर्तित करते हैं । अन्तर अनुपातिक गणक द्वारा विकिरण की गणना की जाती है कार्बन 14 तिथी विधी के जनक प्रो॰ लिब्बे द्वारा प्रयुक्त यत्र की तुलना में प्रचलित विधि अत्यन्त विकसित है । लिब्बे महोदय की स्क्रीन वाल विधी के अनुसार परीक्षण के नमूने को कार्बन में परिवर्तित कर जिजर काउन्टर के भीतरी भाग में फैला दिया

जाता है । यह विधी त्रुटिपूर्ण थी नवीन पद्धति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें वायुमंडलीय प्रदूषण उत्पन्न होने की सम्भावना नहीं रह पाती है क्योंकि नमूने को गैस में बदलने के लिए तैयार करने के पश्चात उसे वहाँ सम्पर्क से मुक्त रखा जाता है । इन दो विधियों के अतिरिक्त और दो विधयाँ काम में लाई जाती हैं । एक के अनुसार - जिजर - मूलर काउन्टर में $CO_2$ की गणना की जाती है । दूसरी विधीमें तरल साइनटिलेसन स्पैक्ट्रोमीटर का प्रयोग होता है।

कार्बन 14 तिथी विधी की कामयाबी के लिए यह आवश्यक है कि परीक्षणीय वस्तु में आवश्यक न्यूनतम मात्रा में कार्बन 14 विद्यमान हो अत: निश्तप्त अस्थि तो इन विधी के लिए अनुपयुक्त होगी , परन्तु अर्धजली हड्डी सर्वथा उपयुक्त होगी । कार्बन 14 परीक्षण के लिए उपयुक्त वस्तुओं में प्रमुख है चारकोल, अस्थियाँ, सुरक्षित काष्ट, घास कपड़े और पीट । केश, पत्तियाँ खाद - मिट्टी, दलदली मिट्टी, आक्षार जल, चूना पत्थर आदि वास्तुओं का भी कार्बन 14 परीक्षण किया जा सकता है । यह जरूरी है कि परीक्षण के लिए जिस वस्तु को लिया गया हो उसमें प्राचीन कार्बन का मूल रूप अर्थात वह कार्बन जो उस वस्तुके प्राणान्त काल में था सुरक्षित हो । परन्तु ऐसा

नहीं होना चाहिए कि आर्वाचीन कार्बन के सम्पर्क से उस वस्तु में किसी प्रकार का रासायनिक परिवर्तन अथवा प्रदूषण आ जाए एसा होने से तिथी की सही गणना नहीं हो पाएगी । अत: पुरातत्वज्ञों का यह कर्तव्य है कि वे उपलब्ध प्राचीन अवशेषों का अत्यन्त सावधानी से संरक्षित करके प्रयोगशाला में भेज दें । यद्यपि कार्बन 14 एक पूर्णतया विकसित वैज्ञानिक पद्धति है फिर भी इसमें अनेक प्रकार की अशुद्धियों की सम्भावना रहती है । इस प्रकार कार्बन 14 में थोड़ी त्रुटियां हैं परन्तु इनके बावजूद अभी तक विकसित तिथी विधियों में यह सर्वाधिक वैज्ञानिक है । इनमें जो थोड़ी त्रुटियां हैं उनको आधुनिक वैज्ञानिक युग में दूर करना असम्भव नहीं है और दिनों दिन इसकी गणना को सही करने का प्रयास किया गया है । इसकी एक बड़ी त्रुटी यह भी है कि इस विधी द्वारा 70000 वर्ष से अधिक प्राचीन वस्तुओं का तिथी निर्धारण नहीं हो पाता । परन्तु एसी अन्य वैज्ञानिक विधयां भी विकसित हो गयी हैं जिससे अत्यधिक प्राचीन पुरावशेषों की तिथी निर्धारण करना सम्भव हो गया है । वस्तुत: इस तिथी विधी का विकास तिथी निर्धारण के क्षेत्र में क्रांतिकारी सिद्ध हुआ । इस विधी की प्रमाणिकता को सिद्ध करने के उन पुरावशेषों पर इसका परिक्षण किया गया जिनकी तिथी सन्देहास्पद मानी जाती थी । अन्य प्राचीन देशों की तुलना में मिश्र के इतिहास का

तिथी क्रम सर्वाधिक प्रमाणिक रूप से ज्ञात है प्रो॰ लिब्बी ने मिश्र में प्रथम राजवंश के मकबरों की काष्टयष्टियों का कार्बन 14 परीक्षण किया । उसके बाद उन वस्तुओं पर भी परीक्षण किये गये जो अधिक प्राचीन नहीं थे जैसे - सेसोस्ट्रिल 111 के अन्त्येष्टि वल्कल के एक - एक टुकड़े और टालेमी के ताबूत के तख्तों के परिक्षणों से थी सही तिथियां मिली । डेड - सी - स्क्राल को ईसा के जन्म के समय का मानते हैं और कार्बन 14 के परीक्षण से इस तिथी की प्रमाणिकता की पुष्टि होती हैकार्बन 14 विधी की प्रमाणिकता पर आश्वस्त होकर कई मान्य तिथियों में सुधार किये गये और आज परिस्थित यह है कि इस परिक्षण के बिना पुरातत्व का कार्य आगे नहीं बढ़ सकता । चारकोल के विश्लेषण द्वारा लैस्कास की प्रगैतिहासिक गुफाओं कीमें बने चित्रों को तिथी 3600 ई॰ पू॰ निर्धारित की गयी और रोडेशिया के नचिफुकन उद्योग की 6000 ई॰ पू॰ निर्धारित की गयी । ब्रेकवुड महोदय ने इन विधी के आधार पर हमुराबी के समय का संशोधन किया । इस शासक द्वारा निर्मित भवन की तिथी 3045 वर्ष पूर्व निर्धारित की गयी । आज भारत सहित सभी देशों में इस विधी का व्यापक प्रयोग किया जा रहा है । परन्तु संयुक्त राज्य अमेरिका आरम्भ से ही आगे रहा है । फाल्सम संस्कृति का काल विद्वानों के

बीच अत्यन्त विवादास्पद विषय था, परन्तु टेक्सास में उपलब्ध एक वन भैंसे की अस्थि के कार्बन 14 परीक्षण द्वारा इस संस्कृति का काल 8000 - 7000 ई॰ पूर्व निर्धारित किया गया जिसमें सभी विवाद खत्म हो गये इसी प्रकार ओरेगांव में उपलब्ध एक रस्सी में गूंथे चन्दन के परीक्षण से यह प्रमाणित हुआ कि एसके प्रयोक्ता इंडियन वहां 9000 वर्ष पूर्व निवास करते थे जापान के विद्वानों ने अपने देश के आद्यैतिहासिक स्थानों में तिथी निर्धारण में इस विधी का खुलकर उपयोग किया है । इस विधी से इस बात का पता चला कि टस्मानियाई लोग 6500 ई॰ पू॰ में इंडोनेशिया से टसमानिया में जाकर बसे थे ।

पोटाशियम - आरगन विधी :-
--x-- x--- x--- x--- x--- यह विधी भी एक पूर्णतया वैज्ञानिक विधी है । यह विधी कार्बन 14 के समान सिद्धन्त पर आधारित है । इसमें पोटाशियम - 40 ($K^{40}$) और आर्गन - 40 ($A^{40}$) के अनुपात - विश्लेषण द्वारा विधी तिथी निर्धारित की जाती है । यह सूत्र $K_{40}/A_{40}$ विघटन के अनुपात का निर्देश करता है । इस विधी का आधार यह तथ्य है कि रेडियों सक्रिय निश्चित गति से में परिवर्तित होता है । अत: एक mass spectrometer में $K_{40}$ और $A_{40}$ के अनुपात का विश्लेषण करके ज्वालामुखी जनित पोटाशियम - बहुल चट्टानों की तिथी ज्ञात करना सम्भव होता है ।

का अर्धजीवन 1330सौ वर्ष माना जाता है । अत: इस विधी से उन प्राचीन वस्तुओं की तिथी निर्धारीत की जाती है । जिनकी तिथी कार्बन 14 से नहीं ज्ञात की जा सकती है । वैज्ञानिकों के प्रयास से इस विधी कापर्याप्त परिष्कार हो जाने से पुरातत्व में इसकी उपयोगिता बहुत अधिक बढ़ गयी है । इसका प्रमुख उदाहरण है टगानिका की ओल्डुवाई संस्कृति के प्रथम स्तर का तिथी निर्धारण करना । $K^{40}$ तिथी विधी के आधार पर ओल्डुवाई संस्कृति के निम्नतम स्तरों की औसत तिथी 50000 वर्ष निर्धारित की गयी । परन्तु इस विधी द्वारा उन पुरावशेषों की तिथी निर्धारित नहीं की जा सकती जो किसी स्थान पर कही ओर से लाये गये हों । क्योंकि उस अवस्था में वे उस स्थान पर मनुष्य के बसने से बहुत पहले के हो सकते हैं । यह विधी उन स्थानों से ही अधिक उपयोगी होगी जहां मनुष्य के बसने तत्काल पूर्व अथवा पश्चात ज्वालामुखी द्वारा पोटेशियम बहुल खनिज का संचय हुआ हो ।

उत्मिक दीप्त तिथी विधी :-
--x---x---x---x---x

केनेडी और नोपेक नामक विद्वानों ने सन 1960 ई. में पुरावशेषी के तिथी निर्धारण की इस विधी का प्रतिपादन किया । यह विधी इस तथ्य पर आधारित है कि मृदभाण्ड सकृजिन वस्तुओं को अतीत में पकाया

- 70 -

गया हो, उनकी उष्मक दीप्त की गणना द्वारा तिथी निर्धारण किया जा सकता है। इस विधी द्वारा प्राचीन मृदभाडों के तिथी निर्धारण की सम्भावना ने वैज्ञानिकों और पुरातत्वज्ञों का ध्यान आकृषित किया। परन्तु इस पर जो अनुसंधान किये गये उससे यह परिणाम सामने आया कि यह विधी उसी अवस्था में उपयोगी होगी जब कोई पुरावशेष पकाने के पश्चात विकृत न हुआ हो। अधिकाश मृदभाड़ों में प्राय: रासायनिक विकृतियां पायी जाती हैं। जिससे सही परिणाम नहीं निकल पाते। परन्तु त्रुटि के बावजूद पुरातत्व में इस विधी की उपयोगिता का महत्व है। और तिथी निर्णय के क्षेत्र में इससे लाभ उठाया जा रहा है। इस विधी का एक अच्छा उपयोग यह है कि इससे असली और नकली मृदभाड़ों का भेद खुल जाता है।

फ्लोरिन परीक्षा तिथी विधी :-
-- x--- x--- x--- x--- x--- x---

सन 1844 से यह जाना जाने लगा कि अस्थि अवशेष जो पृथ्वी के गर्भ में या कब्रों में दबे पड़े रहते हैं उनमें फ्लोरीन की मात्रा होती है। फ्लोरीन का संचार हड्डीयों में धीरे - धीरे होता है। इसकी उत्पत्ति भूमि और जल से होती है और भिन्न - भिन्न क्षेत्रों में इसकी मात्रा में परिवर्तन भी विभिन्न ढगों से होता है कहीं पर कम और कही पर ज्यादाह। इसका मूल कारण उस स्थान की मिट्टी और जल का प्रभाव होता है। इस प्रकार से उसी भूमि में पड़ी हुई हड्डीयों पर इसके कण जम जाते हैं। जितनी हड्डी पुरानी होती जायेगी उतने ही अधिक उस पर फ्लोरीन के कण जमते जायेंगे

रासायनिक विधी से इनका परीक्षण कर तिथी निर्धारित की जा सकती है । यूरेनियम से भीइसका परीक्षण कीया जा सकता है । इसका सर्वप्रथमप्रयोग पिल्ट डाउन पुरुस के सम्बन्ध में किया गया था । इस प्रणाली से केवल साधारण युग का काल मान निर्धारित किया जा सकता है क्योंकि प्रत्येक क्षेत्रों में इनकी मात्रा में विभिन्नता होती है । संक्षेप में यह निश्चित तिथी निर्धारित करने में असमर्थ है । सन 1888 में स्वास कम्बे में, गेली हिल ग्रेवल पिट के उत्खनन से धरातल से 8 फीट नीचे, एक हड्डीयों का ढांचा उपलब्ध हुआ था । परीक्षण के पश्चात उत्खाता लोग इस निष्कर्ष पर पहुंचे स्वास काम्बों की खोपड़ियों और पूर्व पाषाण काल की हड्डीयों में 2 प्रतिशत फ्लोरीन की मात्रा अपूर्व पाषाण काल में एक प्रतिशत फ्लोरीन की मात्रा तथा आधुनिक हड्डीयों में 0.3 प्रतिशत 0.05 प्रतिशत विद्यमान है । गेल हिल कीहड्डीयों में 0.3 प्रतिशत फ्लोरीन की मात्रा मौजूद थी इस आधार पर उत्खाताओं ने उस स्थान की आधुनिक सभ्यता की तिथी निर्धारित की इस विधी का विकास प्रो. डेविडसन ने किया था इस विधी को रेडियों मितीय आमापन भी कहते हैं । चूनिया मिट्टी और चिकनी मिट्टी में दबी अस्थियों में यूरेनियम की मात्रा ग्रेवल और बालू में संचित तत्कालीन अस्थियों से अपेक्षाकृत न्यून रहती है । भूमी की जिस पर्त में अस्थियां

उपलब्ध हुई हों उनसे वे प्राचीनतर हैं अथवा नवीनतर इसका निर्धारण भी कभी - कभी इस विधी से फ्लोरीन परीक्षा के समान किया जाता है । इस विधी में एक खूबी यह है कि फ्लोरीन परीक्षा के समान इसमें पदार्थ का नाश नहीं करना पड़ता । डा॰ आकले ने लिखा है । -

" It does not provide a means of close relative dating a given bone or group of vones showes a certain range in fluorine countent. Unless the difference in age between the bones which arebeing campared is considerable( e.g. 10, 000 years) there is usually an overlap in the rage of theirfluorine- contents. For this reason it would provably be impossible by this method to differentiate clearly between say a sexon and a nealithic skeleton; whereas it should enable are for example, to distingish bones of neolithic or later age from others of Acheulian age when both occur under similar conditions xx at the same locality.

---

Dr. Okely

[illegible]

" It does not provide a means of close relative dating a given bone or group of bones shown a certain range in fluorine content, unless the difference in age between the bones which are being compared is considerable (e.g. 10, 000 years) there is usually an overlap in the range of their fluorine contents. For this reason it would generally be impossible by this method to differentiate clearly between say a Mesolithic and a Neolithic skeleton; whereas it should enable one, for example, to distinguish bones of Neolithic or later age from others of Acheulian age when both occur under similar conditions and at the same locality.

---

15. Oakly

ओब्सिडियन जल स्वर माप विधी :-
--x---x---x---x---x---x---x-

ओब्सिडियन एक प्रकार के ज्वालामुखी गैस से निर्मित पत्थर होता है। इसका उपयोग अतीत में उपकरण निर्माण के लिए किया जाता था। जिस क्षण कोई आकार प्रदान करने के लिए ओब्सिडियन को काटा था तराशा जाता है। उसी क्षण वह सद्य: निर्मित सतह जल का अवशोषण करने लगता है। जिससे उसके अन्दर एक अदृश्य जल स्तर का निर्माण हो जाता है। नवनिर्मित उपकरण के अन्दर जल का प्रवेश ज्ञात गति से होता है। अतीत में जब मनुष्य ने ओब्सिडयन के टुकड़े को तराशा अथवा उससे फ्लक निकाला तो उसने अपने बनाये उपकरण में जल स्तर के निर्माण की शुरूआत की जल स्तर की गहराई के माप के आधार पर उस उपकरण के निर्माण का काल ज्ञात करना सम्भव है जल स्तर के माप की विधी की उपयोगिता ओब्सिडियन तक ही सीमित है। फ्लिट जैस्पर, चर्ट, क्वॉटज इत्यादि पत्थरों के लिए इसकी कोई उपयोगिता नहीं।

पुरातात्विक पदार्थों की रासायनिक प्रयोग द्वारा सुरक्षा :-
--x---x---x---x---x---x---x---x---x---x--

विज्ञान का पुरातात्विक तिथी निर्धारण में बहुत बड़ा योगदान है। लेकिन इसके साथ - साथ विज्ञान का पुरातत्व के क्षेत्र में एक बड़ा योगदान वस्तुओं के संरक्षण एवं परिरक्षण का भी है। जब पुरातत्व को उत्खनन में प्राचीन वस्तुएं प्राप्त होती हैं तो कई वस्तुओं को विनष्ट होने से बचाने के लिए विशिष्ट रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा

संरक्षित करना अनिवार्य हो जाता है। धातु निर्मित उपकरणों की सफाई के लिए भी रासायनिक प्रक्रियाओं का सहारा लिया जाता है।

पृथ्वी में पड़े हुए पदार्थ अपने वास्तविक स्वरूप को खो बैठते हैं। इसका प्रमुख कारण काल गति मिट्टी की शीतोष्णता और उनका सलोनापन है। इतिहास निर्माणकी दृष्टिकोण से उन्हें सुरक्षित रखना अनिवार्य होता है। अत: उत्खननकर्ता को रसायन शास्त्र का सहारा लेना पड़ता है। उत्खनन क्षेत्र में भी एक प्रवीण रसायन शास्त्र की व्यवस्था होनी चाहिए। इसका प्रमुख कर्तव्य अत्यन्त जर्जरित अवस्था में प्राप्त हुए पदार्थों को छाँटकर स्तरानुसार अलग करना, उसके बाद उसको सावधानी तथा रासायनिक प्रयोग द्वारा सुरक्षित रखना होना चाहिए। उत्खनन क्षेत्र में छोटी - छोटी रसायन शालाओं की भी थोड़ी - थोड़ी दूर पर आवश्यकता पड़ती है। जिससे अत्यन्त धन्नप्राय: पदार्थों का वही पर आरक्षण हो सके क्योंकि भूमी से बाहर निकलते ही जब वस्तुओं पर जब हवा और धूप पड़ती है तो कुछ वस्तुएं टूटने लगती हैं। अत: क्षेत्रीय रसायन शास्त्री का यह प्रमुख कर्तव्य हो जाता है कि वह ऐसी वस्तु पर फौरन कोईलेप लगाकर उसे किसी बड़ी रसायन शाला में भेज दे। उसके

लिए यह भी जरूरी हो जाता है कि प्राप्त सभी पदार्थों का क्रमानुसार उल्लेख कर लें अन्यथा तितर बितर हो जाने की सम्भावना रहती है । सबसे अधिक प्रवीणता सिक्कों के आरक्षण और लेखन में बरतनी चाहीए उत्खनन क्षेत्र में स्वच्छ जल की अवस्य मेव व्यवस्था होनी चाहिए ।

पदार्थों के आरक्षण में जिन विभिन्न रासायनिक या अरासयनिक उपकरणों की आवश्यकता पड़ती है । संक्षेप में उनका निम्न ढ़ंग से उल्लेख किया जा रहा है ।

डिस्टिल्ड वाटर

नाइट्रिक एसिड

हाइड्रोक्लोरिक एसिड

एसीटोनअमिल

अमिल एसिटेट

सिल्वर नाइट्रेट

सिट्रीक एसिड

सल्फ्यूरिक एसिड

एसिटिक एसिड

अमोनिया

कास्टिक सोडा

सेलूलाइड कटिंग्स

शेलक , वेडक्रिल 122 x

टोलुअल , टीपोल

सोडियम सेस्क्यूकार्बोनेट

पोलिविनिल एसीटेड

मेथीलेटेड स्पिरिट या अलकोहल

पेरिस प्लास्टर

ग्रेनुलेटेड जिंक

ग्रेफाइट स्लैब

अब नीचे कुछ पदार्थों का उल्लेख किया जा रहा है जिनका कि उपरोक्त कैमिकल द्वारा सरक्षण किया जाता है । ये पदार्थ मुख्यत: तीन श्रेणी में आते हैं।

प्रथम श्रेणी में पथरीले और चूने के पदार्थ जैसे मृद्भाड या मिट्टी के खिलौने, शिशा, घड़ियां, चूना, पत्थर, फेमांस, खनिज और मीना आदि।

दूसरी प्रकार की वस्तुएं धातु की वस्तुएं जैसे लोहा, चांदी, सोना, तांबा तथा मिश्रित पदार्थ आदि ।

तीसरी प्रकार में लकड़ी, कागज, रेशम, कपड़ा, खाल, हड्डी, सींग, चमड़ा, और हाथी दांत के उपकरण आदि आते हैं ।

मृदभाण्ड, पत्थर और फेमांस पर रासायनिक प्रयोग :-

आधुनिक उपकरण से असंख्य मृदभांड, पत्थर और पदार्थों के उपकरण उपलब्ध हुए हैं । इनमें से अधिकांस उपकरण अभी भी विभिन्न संग्रहालयों में सुरक्षित हैं । पृथ्वी के अन्दर अधिक दिनों तक पड़े रहने के कारण इनमें सलोनापन आ जाता है । और कुछ अत्यन्त ही जीर्ण शीर्ण अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं । अत: इनको सुरक्षित रखना जरूरी होता है । कभी - कभी तो उन पदार्थों जिन पर नमक का प्रभाव अधिक पड़ा है को केवल साफ पानी से कई बार धोने से ही काम चल जाता है । पर खास तौर से उन पर रसायन पदार्थों का उपयोग आवश्यक है ।

सर्वप्रथम रसायन शास्त्री के लिए यह जरूरी होता है कि वह पदार्थों पर आये नमक के प्रभाव को दूर करे जिसके कारण उनके नष्ट होने की सम्भावना है । इसके लिए सबसे अच्छी विधी यह है कि पदार्थ को पानी में डाल दें जिससे नमक का प्रभाव कम होता रहता है । ऐसा करने से पहले यह देख लेना चाहिए कि कहीं पदार्थ पानी में डालने से नष्ट तो नहीं हो जायेगा । इसके परीक्षण के लिए पदार्थ पर पानी की बूंद डालकर उसका प्रभाव देखें । यदि नष्ट होने की लेशमात्र भी सम्भावना है तो उसे शीघ्र ही रसायनशास्त्रज्ञ के पास रसायन शाला भेजा जाये । पदार्थों को जल में डालकर उसके नमक के प्रभाव को दूर करने की प्रणाली को स्टीपिंग कहते हैं । छोटे - छोटे पदार्थों को किसी भी बर्तन में रखकरसाफ किया जा सकता है परन्तु बड़े पदार्थों को साफ करने के लिए एक लम्बे लोहे, टीन के टब या उसी प्रकार के किसी अन्य बर्तन या स्थान की आवश्यकता पड़ती है नमक के प्रभाव को दूर करने के लिए इनमें स्वच्छ जल भर दिया जाता है बीच में लकड़ी की एक जाली रख दी जाती है । पदार्थ पर पक्की काली स्याही में नम्बर आदि डालकर जाली पर रख दिया जाता है । पदार्थ पूर्णतया पानी में डूबा रहना चाहिए ताकि उसका सलोनापन दूर हो सके पानी में

थोड़ा भी नमक का असर नहीं होनाचाहिए । साथ ही पानी में डालने से पहले पदार्थ का पूर्ण विवरण लिख लेना आवश्यक होता है। पानी को प्रथम सप्ताह में प्रत्येक दिन, द्वितीय में दो बार और फिर सप्ताह में एक बार पानी बदल देना चाहिए । यह क्रिया तब तक रखनी चाहिए जब तक वस्तु से नमक का प्रभाव दूर न हो जाये कुछ स्थानों पर केवल नमकीन पानी ही मिलता है । ऐसी दशा में वहां पर स्वच्छ पानी बाहर से मंगा लेना चाहिए इस प्रकार से पदार्थों के नमक के प्रभाव से दूर हो जाने पर उन्हें एक - एक करके पानी से निकाल लेना चाहिए । थोड़ा सूख जाने के बाद, उन पर लगी मिट्टी को चाकू या ब्रुश की सहायता से साफ करना चाहिए । जिन पदार्थों पर गहरा चूना जम गया है उन पर 3 प्रतिशत नमक का तेजाब लगा देना चाहिए या आवश्यकतानुसार उसी के घोल में पदार्थ को भिगो देना चाहिए ताकि उसका प्रभाव पूर्णतया दूर हो जाये । पदार्थों पर जमे खड़िया मिट्टी के अंश तोपानी में भीगने पर स्वत: ही गिर जाते हैं अन्यथा उन्हें चाकू से खुरच कर हटा देना चाहिए । प्रत्येक ट्यूबों में घटित क्रमिक क्रिया का स्पष्ट उल्लेख कर लेना चाहिए ताकि पदार्थों के परीक्षण में सुलभता रहे पदार्थों को औजारों से साफ करने के बाद उन्हें पुन: स्वच्छ जल से धोना चाहिए जिससे वे पूर्णतया

साफ हो जाए । यह तो पदार्थों के सलोनेपन दूर करने की क्रिया, अब हम आगे पदार्थों के रासायनिक प्रयोग तथा उसकी परीक्षा विधी पर प्रकाश डालेंगे ।

पदार्थ के धोये हुए पानी में सलोनेपन के परीक्षा के लिए सिल्वर नाइट्रेट घोल को उपयोग में लाना चाहिए । यह घोल 5 ग्राम सिल्वर नाइट्रेट के टुकड़े को 500 सी॰ सी॰ पानी और 10 सी॰ सी॰ तेज तेजाब मिलाकर तैयार किया जाता है इसका परीक्षा निम्न विधी से किया जाता है -

एक ही आकार के शीशे के दो ट्यूबों में बराबर मात्रा में एक में स्वच्छ पानी तथा दूसरे में पदार्थ का साफ किया पानी डाल देना चाहिए और उसमें सिल्वर नाइट्रेट घोल ( सिल्वर नाइट्रेट घोल = शोरे के अम्बल = मसार के घोल की 10 बूंदें अलग - अलग डाल देनी चाहिए । तत्पश्चात दोनो ट्यूबों को सावधानी से हिलाना चाहिए । सफेद जमी हुई भाप या दूधिया पन इस बात का संकेत करेगी कि अभी पदार्थों में क्षार मौजूद है यह दूधिया पन स्वच्छ पानी में कम और नमकीले पानी में अधिक पड़ेगा । इसकी मात्रा को कम करने के लिए पदार्थों को पानी में बार - बार धोते रहना चाहिए

जब तक कि स्वच्छ पानी में उसी प्रकार का दूधियापन न आ जाये । इस प्रयोग से यह प्रतीत होगा कि पदार्थ नमक के प्रभाव से पूर्णतया मुक्त हो गया है । अन्त में यदि पदार्थों में क्षार की मात्रा अधिक हो तो 5 प्रतिशत बोरियम क्लोराइड के घोल से जो हाइड्रोक्लोराइड एसिड से खट्टा हो गया हो फिर परीक्षण करना चाहिए । पदार्थों पर जमी हुई सफेद भाप इस बात का संकेत करेगी कि अभी भी क्षार की मात्रा मौजूद है । इसके पश्चात पदार्थों को खूब साफ पानी से धोकर धूप में सुखाना चाहिए । बड़े पदार्थों को खुली हुई वायु में तथा छोटे उपकरणों को उष्ण वातावरण में अर्थात लगभग 80 - 100 तापक्रम में सुखाना चाहिए । छोटे पदार्थों को गरम चूल्हे पर भी सुखाया जा सकता है । कच्ची मिट्टी के पदार्थ पानी का प्रभाव सहन नहीं कर पाते हैं उनके पानी डालने पर घुलने की आशंका रहती है अतः उन्हें पहले छाया में खूब सूखा लेना चाहिए तत्पश्चात उन पर 10 प्रतिशत विनायल एसी० ड़ालने पर घुल व टूट न सके जो पदार्थ खराब कच्ची मिट्टी के बने हैं वे निश्चय ही पानी में डालने पर घुल व व्यर्थ हो जायेंगे । अतः उनको पहले पका लेना चाहिए । पदार्थों पर लगे रंग को कायम रखने के लिए उनके उतने स्थान पर 5 प्रतिशत विनायल एसीटैट का लेप लगाकर तब पानी में डालना चाहिए । टूटे हुए पदार्थों को बड़ी सावधानी से जोड़ना चाहिए ।

जिससे कि उनका अन्य भाग न टूट सके इसके लिए एक प्रवीण, बुद्धिमान तथा कार्य कुशल व्यक्ति की व्यवस्था होनी चाहिए । जिससे कि वह उपयुक्त सभी कार्यों को सावधानी से कर सके ।

बड़े - बड़े पत्थरों के पदार्थ भी पृथ्वी के गर्भ में एक लम्बे समय तक पड़े रहने के कारण अम्ल के प्रभाव से ग्रस्त हो जाते हैं । स्टीपिंग विधी से इनके सलोनी पन को हटाने में बहुत समय लग जाता है । इसके लिए कागज के गुद्दे का प्रयोग करना चाहिए । यही सलोने पन दूर करने की सबसे सुगम विधी है । यह निम्न विधी से तैयार किया जाता है । कागज के छोटे छोटे टुकड़े करके, एक ट्यूब में गर्म पानी डालकर उसी में 24 घंटे तक पड़े रहने देना चाहिए । जब खूब गल जाये तो तब लकड़ी से खूब कूट कर उनका पतला गुद्दा तैयार कर लेना चाहिए । तत्पश्चात उसी का 1/2 इंच का लेप पत्थर पर लगा देना चाहिए । जब यह सूख जाये तब उन्हीं पर उसका दूसरा लेप लगा देना चाहिए । यह क्रिया तब तक जारी रखना चाहिए जब तक पदार्थ से सलोनापन दूर न हो जाये । यह परीक्षण करने के लिए कि पदार्थ से सलोनेपन दूर हो गया है या नहीं, शोरे के अम्ल और मसार के घोल को उपयोग में लाना चाहिए । जब पदार्थ नमक के प्रभाव से मुक्त हो जाये तब उन्हें साफ पानी से धोकर सुखाना चाहिए ।

चूना संगमरमर और दूसरे पत्थर के छोटे-छोटे पदार्थ भी अम्ल के प्रभाव से ग्रासित हो जाते है । कुछ पदार्थ जैसे खड़िया मिटटी और अलाबस्तर पानी में घुलनशील होते है । अत: उन्हे स्टीपिंग विधी से घुलने से बचाया जा सकता है । इसके लिए पानी में चूने का तत्व और क्षार के घोल को मिला कर उपयोग में लाना चाहिए अथवा पानी के एक ट्यूब प्लास्टर आफ पेरिस को कर छोड दे जब वह पानी के नीचे जम जाए तब उपर के पानी का प्रयोग करना चाहिए इस विधी से सलोनापन पूर्णत:दूर हो जाता है ।

धातुओं की सरंरक्षण विधी :- धातुओं पर रासयनिक प्रयोग करना बहुत कठिन होता है । इसके लिए एक ऐसा प्रवीण व्यक्ति होना चाहिए जिसको रसायन और उसका व्यावहारिक या प्रयोगात्मक ज्ञान हो । धातुकई प्रकार की होती है जैसे लोहा , चांदी ,सोना , तांबा आदि पर अलग-अलग रसायनो का प्रयोग होता है इसका संक्षिप्त विविरण निम्न लिखित है ।

लोहा :- अधिकास समय तक मिटटी में पड़े रहने के कारण लोहे का अधिकासभाग गल जाता है और जंग लगजाता है । यह जंग इसकी चुम्बक की



-84-

शक्ति को खत्म करके उसे खोखला बना देता है। अतः प्राप्त पदार्थ को सुरक्षित रूप देने के लिए उन पर रासायनिक प्रयोग अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। इनको एलक्ट्रोलिटिक रिडक्शन से साफ किया जा सकता है। इसमें पदार्थ को धातु की जिंक सीट से ढक दिया है। और 5 प्रतिशत कास्टिक सोढा के घोल से साफ किया जाता है। यह घोल सामान्यतः शीसे के बर्तन में तैयार किया जाता है। लगभग 6 घंटे के बाद पदार्थ जिंक के प्रभाव से पूर्णतया मुक्त हो जाता है। और उसको थोडी देर के लिए 2 प्रतिशत डाइल्यूट सल्फ्यूरिक एसिड में रखा दिया जाता है। ताकि पदार्थ पर लगे हुए जिंक के निशान पूर्णतया खत्म हो जाये। तत्पश्चात उनको तब तक वे क्लोराइड से रहित न हो जाये। अंत में उन को सुखाकर उन पर 10 प्रतिशत विनायल एसीटेट या वेकलाइट वार्निश का लेप लगा देना चाहिए। कुछ लौह धातु के पदार्थ जो अत्यन्त जर्जरित हो जाते है। उनको एलक्ट्रोलिटिक रिडक्सन से साफ नही किया जा सकता है। उनको 5 प्रतिशत कास्टिक सोडा के घोल में लगभग एक सप्ताह तक के लिए डाल देना चाहिए। और उसके बाद उसको सावधानी से तब तक साफ करना चाहिए जब तक कि वह क्षारसे रहित न हो जाए। कार्बोरन्डम फाइल और ब्लाक की सहायता से पदार्थ पर जमें हुएजिंक के धब्बो को दूर कर देना चाहिए। उसके बाद बेकलाइट

या पोलि विनायल एसीटेट या वेक लाइट वार्निश का लेप लगा दिया जाता है। बिजली की सहायत से इन पदार्थों का रक्षण बडी आशानी से हो जाता है। एसे पदार्थों की सर्वाधिक सुरक्षा रसायनशाला में ही हो सकती है। जहा पर बिजली का पूर्णतया प्रबन्ध होता है। अत: उन्हे सीधा ही वहां पर भेज देना चाहिए।

चांदी :-

चांदी और चांदी से मिश्रित पदार्थों को जिनमें तांबे को मात्रा मिली हुई है। 3 प्रतिशत गन्धक के तेजाब से तब तक धोना चाहिए जब तक तांबे के लाल चित्ते साफ न हो जाय। तत्पश्चात उन सिक्को को ब्रुस और जल की सहायता से खूब साफ करना चाहिए। शुद्ध चांदी के सिक्को या दूसरी धातु निर्मित पदार्थों को डाइल्यूट अमोनिया या डाइलूट फार्मिक एसिड से साफ किया जा सकता है या उनको जिंक सीट से ढककर एसिटिक एसिड की कुछबूंदों से अम्लीभूत किये हुए कुछजल में लगभग दो घंटे तक डालकर भी साफ किया जा सकता है। अन्त में शुद्ध जल से पदार्थों की सफाई अवश्य करनी चाहिए।

सोना :-

सोने के सिक्को पर रासयनिक प्रयोग की आवश्यकता नही पडती है। जिन सिक्को पर धब्बे पड जाते है या इसी तरह की कोई दूसरी खराबी आ जाती है तब उन्हे स्ट्रांग हाइड्रोक्लोरिक एसिड से साफ किया जाता है और डेटर जेन्ट घोल में उन्हे उबाल दिया जाता है।

ताँबा :-

ताँबा और उससे मिश्रित पदार्थों को साफ करने के लिए एक अंश तरतार अम्ल एक अंश कास्टिक सोडा और 10 अंश पानी के घोल का प्रयोग करना चाहिए। पदार्थ को तब तक पानी में रहने देने चाहिए जब तक उस पर का हरापन दूर न हो जाये उसके बाद पानी में खूब धोकर उन पर 10 प्रतिशत विनायल एसीटेट के घोल को लगा देना चाहिए। सर मार्टिमर ह्वीलर ने अपनी पुस्तक आर्कियोलोजी फ्राम दी अर्थ के पृष्ट 198 पर ताम्र तथा ताम्र मिश्रित धातुओं की रासायनिक प्रयोग विधी पर बहुत सुन्दर प्रकाश डाला है। जो निम्नलिखित रूप से उद्धृत है।

" If the electrolytic method is consideredxx undafe, copper or it'salloys may be cleaned in a mixture of I part trataric acid,Ipart of castic Soda,and 10 part of water. The object should be kept in the mixture until all the green incrustations have been dissolved away leaving the liver red care behind. They are then throughly washed in water and finally coated with beloacryl or polyvinyl acetate. An alternative treatment is:(i)- Citric acid and pickling in 50% percent, sulphric acid to remove any red oxide(ii) Neutralize with ammonia or any alkali after the acid treatment (iii) Wash in distilled water (iv) Carry out the silver nitrate test with the last wash water;(v) Dry in alcohal and (vi) Coat with bedacryl or polyuinyl acetate Completly oxidized coper coins should, at the outset, be left in a 10 Percent sodium metaphosphate solution

Until free from calcareour matter rometimes this is sufficient to reveal the inscription; if not; they should be treated with theabove mentioned tartrate mixture deluted to half strength ________________

when a coins is immersed for cleaning, its label must be securely attached to the wire where by it is suspended."

---

ARCHAEOLOGY FROM THE EARTH "Dr. WHEELAR "

धातुओं के अतिरिक्त तीसरे प्रकार के कुछ और पदार्थ होते हैं जिनका सररक्षण भी अवश्य होता है ये पदार्थ शीशा, लकड़ी, हड्डी, दांत, कपड़ा, कागज तथा भोज पत्र आदि होते हैं। इनके सररक्षण कीप्रमुख विधियां निम्नलिखित हैं।

शीशा :-
----
आक्सीडाइज्ड शीशा एलेक्ट्रोलिटिक रिडक्शन से भी साफ किया जा सकता है। लेकिन इसकी सफाई ताजे उबाले हुए पानी में करनी चाहिए। अथवा शीसे के पदार्थों को सर्वप्रथम कुछ घंटों के लिए कास्टिक सोडा के घोल में उसके बाद दो प्रतिशत गन्धक के घोल में डालना चाहिए और जस्ते की मात्रा समाप्त हो जायें तब गर्म पानी में धोकर और खूब सुखाकर उन पर 10 प्रतिशत विनायल एसीटेट का लेप लगा देना चाहिए। शीशे को एसी बोतल में बंद कर देना चाहिए जिस पर कि हवा न लग सके।

लकड़ी :-
----
लकड़ी के पदार्थ पृथ्वी की शीतोष्णता के कारण गल जाते हैं और उत्खनन के पश्चात हवा और धूप लगते ही वे सूखकर टूटने और अस्त व्यस्त होने लगते हैं और बड़ी सावधानी से उन्हें आरक्षित करना चाहिए।

नमकीले क्षेत्रों में उपलब्ध हुए पदार्थों को स्वच्छ पानी से धोना चाहिए या सलोनेपन को दूर करने के लिए पतले कागज की गुद्दी के लेप का प्रयोग करना चाहिए । साधारणत: पदार्थों को टूटने से बचाने के लिए उन्हें गहरे बुरादे की परत में रखना चाहिए जहाँ पर उनकी हवा एवं धूप से रक्षा हो सके । पदार्थों की रक्षा हेतु उन्हें मास, अखबार, वेटसा डस्ट की गहरी परतों में भी रखा जा सकता है । पदार्थों पर अन्त में 10 प्रतिशत नियाल एसीटेट का लेप लगा देना चाहिए । जमीन में पड़े रहने के कारण लकड़ी में दीमक लग जाती है । अत: उन्हें दूर करने के लिए अजवायन का सत या कोयले का धूआ उपयोग में लाना चाहिए । उत्खनन कर्ता के लिए यह अत्यन्त आवश्यक हो जाता है कि वह यह ध्यान रखे कि लकड़ी पर किसी भी प्रकार का हवा का प्रकोप न हो सके । पदार्थों को शीघ्र ही रसायनशाला भेज देना चाहिए जहाँ पर उनका आरक्षण हो सके डा॰व्हीलर ने अपनी पुस्तक आर्कियोलोजी फ्राम दी अर्थ में लिखा है -

" Sometimes the wood can be sbowly dried and the moisture replaced by glycerine which is retained by a skin of 10 % polyvinyl a cetate or shallae in alcohal."

---

" Archaeology from the earth page-99' Dr. Wheeler'

जोड़ने की विधी :-

मद्भाड़ों को जोड़ने के लिए लाख और सरेस का प्रयोग किया जाता है । लाख अच्छी किस्म का होना चाहिए जिससे कि पात्र आसानी और मजबूती से जुड़ सके । लाख को साफ की हुई स्प्रिट में घोल कर उसे टूटे हुए किनारों पर लगाकर जोड़ देना चाहिए । स्थानों को जोड़ने सेपहले उनकी सफाई करना बेहद जरूरी है और उन्हें थोड़ी देर तक धूप में या छाया में सूखने भी देना चाहिए । जिससे कि वे मजबूती से जुड़ जायें । लाख काघोल अत्यन्त ठोस बनाना चाहिए । इसके अतिरिक्त विनायल एसीटेट के घोल से भी टूटे हुए किनारों को जोड़ा जा सकता है । यह घोल विनायल एसीटेट की राल और स्प्रिट बराबर मात्रा में मिलाकर बना लिया जाता है । 5 से 10 प्रतिशत एसे घोल से जीर्ण पदार्थों को बड़ी आसानी से जोड़ा जा सकता है । बड़े पदार्थों को जोड़ने में यह घोल सीमेन्ट की तरह कार्य करता है । बड़े से बड़े पदार्थों को भी इस घोल से जोड़ा जा सकता है । पत्थर के पदार्थों को जोड़ने के लिए भी लाल और विनायल एसीटेट का प्रयोग किया जाता है । बड़े पत्थर के पदार्थों को पत्थर का चुरा और मैगनेशियम क्लोराइड को मिलाकर जोड़ा जा सकता है ।

यह लेप भी एक प्रकार की सीमेंट का काम देता है । टूटे हुए भाग को इस लेप से दो तीन दिन के अन्दर में बड़ी आसानी से जोड़ा जा सकता है ।

हड्डी और दांत के पदार्थ :-

ये पदार्थ अत्यन्त जीर्ण शीर्ण अवस्था में उपलब्ध होने के कारण सुखाने पर टूटने लगते हैं । विशेषकर जहाँ पर मिट्टी में सलोनापन अधिक है । वहां पर ये एक दो दिन में ही चूर्ण - चूर्ण हो जाते हैं । सलोनापन दूर करने से पहले इन पदार्थों को तागों से अवश्य बांध देना चाहिए । जिससे वे टूट न सकें और उसके बाद उन्हें स्वच्छ पानी से साफ करचूल्हे या धूप में सूखा लेना चाहिए । रात भर सूखने के बाद बंधे हुए तागे खोल लेने चाहिए । और तागे के स्थान पर लाख लगा देना चाहिए अन्त में 10 प्रतिशत विनायल एसीटेट का लेप लगा देना चाहिए । शव स्थानों में उत्खनन करते समय बड़ी सावधानी बरतनी चाहिए । शव अवशेष को उठाने से पहले उनका चित्र लेना अनिवार्य होता है । जिससे उसकी आकृति का पुराविवरण लिखा जा सके । जो अस्थि अवशेषअत्यन्त कमजोर होते है उनमें ताकत लाने के लिए 10 प्रतिशत विनायल एसीटेट का लेप अथवा हल्की लाख का लेप लगा देना चाहिए । अस्थिअवशेष को उठाने में बड़ी सावधानी बरतनी चाहिए । उन्हे कागज के टुकडे अथवा हल्के वस्त्र के टुकडे से लपेट के उठाना चाहिए जिससे वे टूट न सके । हड्डियों का सलोनापन दूर करने के लिए भी कागज की लुब्दी का प्रयोग किया जाता है । हल्के हाथी दांत के

पदार्थ पर पेरिस का प्लास्तर लगा देना चाहिए और इससे पहले एक लकड़ी की डंडी बाधा देनी चाहिए । जिससे पदार्थ को इधार उधार हटाने में सफलता रहे ।

कपड़ा तथा कागज :- कपड़े तथा कागजों का सलोनापन दूर करने के लिए उन्हें केवल गीले सोखतों में रखा जाना चाहिए । धीरे - धीरे ये सोखते इनके सलोनेपन को सोख लेते हैं । इसके बाद मुलायम ब्रुश से मिट्टी हटा कर उन्हें सुखा लेना चाहिए ।

भोज पत्र :- भोजपत्र से सलोनापन दूर करने के लिए भाप को उपयोग में लाना चाहिए । किसी खौलते हुए पानी पर एक [illegible]लार के जाल पर दो तीन मिनट के लिए रख देना चाहिए । भोज पत्र जब भाप से गीला हो जाये तो उसे सोखते के बीच में रख देना चाहिए । जिससे इसका सलोना पन दूर हो जाये । सोखता भाप के साथ सलोनेपन को भी सोख लेता है । अन्त में 10 प्रतिशत विनायल एसीटेट का लेप लगा देना चाहिए ।

उपरोक्त विवरणों से यह ही पता चलता है कि आज विज्ञान पुरातत्व के लिए आवश्यक । बिना विज्ञान के पुरातत्व का कोई भी काम आगे नहीं बढ़ सकता है । रसायन विज्ञान के बगैर पुरातत्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती है । अत: पुरातत्व और विज्ञान में अटूट सम्बन्ध है ।

## पुरातत्व को वनस्पति विज्ञान की देन

वनस्पति विज्ञान ने भी पुरातत्व के विकास में बहुत योगदान दिया है । पुरातत्व को जो आदिकालीन वानस्पतिक अवशेष प्राप्त हुए हैं । उनके आधार पर वनस्पति शास्त्रीयों ने उसकी तिथी निर्धारण की है । पृथ्वी एक आग का गोला थी वह धीरे - धीरे ठंडी हुई और उस पर वर्षा हिम आदि पड़े । पृथ्वी पर अनेक प्रकार की वनस्पतियां उत्पन्न हुई । पृथ्वी पर कई बार हिम युग आया और कई बार अर्न्तहिम युग आया । जिससे जीव एवं वनस्पतियों की कई जातीयां नष्ट हो गई और कई नई जातीयों का जन्म हुआ । इस प्रकार पृथ्वी पर अनेक प्राकृतिक परिवर्तन होते रहे और हर युग पृथ्वी के गर्भ में अपने अवशेष छोड़ते रहे जिनके आधार पर उस समय का वातावरण एवं उनकी तिथी निर्धारित की जाती है । वनस्पति वैज्ञानिकों द्वारा निर्धारित तिथी विधी निम्न वर्णित है ।

1. पराग विश्लेषण तिथी विधी :-

पराग या पुष्प रज अविनाशी वस्तू है यह मिट्टी में दबकर कई सौ वर्षों तक सुरक्षित रह जाते हैं । हिम युग में भूमण्डल का अधिकांश भाग बर्फ से ढक गया अर्न्तहिम युग में

बर्फ के पिघलने के फलस्वरूप पराग युक्त बीज अस्त व्यस्त स्थिति में पड़े हुए मिले । आदि काल में पक्षी और कीड़ो द्वारा इस पराग कणों के एक पुष्प से दूसरे पुष्प में प्रति स्थापना के फलस्वरूप पराग संचय होता रहा । पृथ्वी की परतों में पड़े हुए पुष्प रजों के विश्लेषणों द्वारा, वनस्पति के विकास का अध्ययन करके तिथी निर्धारण किया जा सकता है ।

डेनमार्क, हालैंन्ड आदि कई अन्य देशों में पराग विज्ञान की बहुत अधिक तरक्की हुई है । जिससे इन देशों की वनस्पति के विकास का विस्तृत विवरण उपलब्ध हो गया है । अब यह बताया जा सकता है कि प्रत्येक प्रत्येक शताब्दी में इन देशों की वनस्पति का क्या स्वरूप था । कहीं - कहीं तो प्रगैतिहासिक कालीन पशुओं जैसे - रेडीयर, मैमथ इत्यादि की नासिका राध्रों में श्वास द्वारा पहुंचे पराग सुरक्षित पाये गये हैं । जिनके विश्लेषण से तत्कालीन वनस्पति का स्वरूप निर्धारण किया गया ।

2 · वृक्ष - वलय विश्लेषण विधी :-

जब किसी पेड़ के तने को काटा जाता है तो उसकी मोटाई में प्राय: ऐसा वलय समूह दिखता है जिसका केन्द्र बिन्दु एक ही होता है । ये वलय ही पेड़ के वार्षिक विकास के

चिन्ह माने जाते हैं । प्रत्येक वलय का अपने निकटतम से साफ अन्तर दिखाई देता है । क्योंकि बसन्त ऋतु में बड़े आकार के और हल्के रंग के कोषाणुओं का निर्माण होता है । और ग्रीष्म ऋतु में इनका आकार छोटा और रंग गाढ़ा होता है । वृक्षों के विकास के संकेत इन्हीं इन वलयों की मोटाई एवं ग्रीष्म कालीन तथा बसन्त कालीन उष्णता एवं आर्दता पर निर्भर करती है। एक ही क्षेत्र के समकालीन वृक्षों में निर्मित वलयों में अदभुत समानता देखी जाती है । एक वृक्ष के तने के पतले एवं चौड़े आकरी दूसरे वृक्षों के वलयों से मेल खाते हैं । तिथी निर्धारण मूलत: इसी तथ्य पर आधारित होता है । सभी वृक्षों की सम समायीकरण विधी द्वारा तिथी निर्धारण की जाती है । यदि किसी ज्ञात तिथी से वलयों की गणना प्रारम्भ की जाये तो उस वृक्ष की आयू का पता लगाना, जिसके काटे जाने की तिथी ज्ञात हो, सम्भव हो जाएगा ।

माना एक वृक्ष 1990 ई॰ में काटा गया और उसके परीक्षण से यह पता चलता है कि वह पेड़ 400 वर्ष पुराना है तो उसके वलय 1590 ई॰ तक बनते रहे और दूसरा वृक्ष भी मिलता है, जो 1890 ई॰ में काटा गया था । जब दोनों वृक्षों के वलयों की तुलना की जाएगी तो 300 वलय समान मिलेंगे । यदि दूसरे वृक्ष की आयू भी पहले वर्ष के बराबर रही होगी तो पुन: 100 वर्ष अतीत के वलयों का क्रम निर्माण सम्भव हो जाएगा ।

## पुरातत्व को भूतत्व विज्ञान की देन

पुरातत्व को भूतत्व विज्ञान की देन बड़ी महत्वपूर्ण है । प्रगैतिहासिक अध्ययन को भूगर्भ शास्त्र ने ही ठोस आधार प्रदान किया । भूतत्व वेक्ताओं ने ही सबसे पहले पृथ्वी के गर्भ में दबे आदि कालीन मानव के अस्थि - अवशेषों एवं लुप्त प्राण्यिों के कंकालों के साथ अश्मोपकरण प्राप्त किये । इसके लिए जान फ्रिडरिख एस्पर, रार्बट - प्लाट, परेरे, विशाप लिटलटन, जान फ्रेरे आदि अटठारवीं शताब्दी के शोधकर्ताओं की देन महत्वपूर्ण मानी जाएगी। उन्नीसवीं शताब्दी के भूगर्भ शास्त्रीयों ने भी मनुष्य की प्राचीनता सम्बन्धी अनेक विवरण प्रस्तुत किये । जेम्स हटन तथा टमेल ने "एक रूपता का सिद्धान्त" प्रतिपादित किया । उन्होंने "थ्योरी आफ दी अर्थ" में यह व्यक्त किया कि भूर्गभीय परतों के निर्माण उन्हीं प्राकृतिक प्रक्रियाओं के परिणाम माने जायेंगे जो आज भी समुद्र, नदी, और झील में विद्यमान है । इसके अतिरिक्त वेडेल सिमोन्सेन, और टाम्सेन ने "त्रियुग सिद्धान्त" तथा डार्विन महोदय ने "विकास वाद का सिद्धान्त" प्रतिपादित किया । चार्ल्स ल्येल ने "प्रिंसीपल आफ ज्यूलोजी" (1830 - 33 ई०) में स्पष्ट किया कि भूगर्भीय स्तर निर्माण की प्राचीन तथा उसके सदृश आधुनिक प्राकृतिक प्रक्रियाओं

में एकरूपता है । मानव जाति की प्राचीनता सिद्ध करने की दिशा में कार्यरत उन्नीसवीं शताब्दी के शोधकर्ताओं बेलजियम के स्मालिंग तथा इंग्लैंड के मैकएनरी का नाम महत्वपूर्ण है । परन्तु इनके समकालीन टर्नेल, डुमा, क्रिस्टोल इत्यादि शोधकर्ता जो दक्षिणी फ्रांस की गुफाओं में खोज करते रहे, उनकी उपलब्धियां भी महत्वपूर्ण हैं । प्रेस्टविच, फाल्कोनर, जान इवान्स, पेन्गेली इत्यादि भूतत्वज्ञों को पुरातत्व का क्षेत्र में काफी शोहरत मिली, स्मर्लिंग महोदय ने कई गुफाओं में खोज करके अनेक एसे मानव खोपड़ियों तथा उपकरणों को प्राप्त किया । जिनका सम्बन्ध लुप्त गैन्ड़ों तथा मैमथ से स्थापित किया जा सका स्मर्लिंग ने यह विचार व्यक्त किया कि उनके द्वारा उपलब्ध मानव अस्थियां तथा अस्मोपकरण निःसन्देह उन लुप्त प्राणियों के समकालीन हैं जिनके साथ वे संचित मिले ।[1] मैक एनरी को 1825 ई० में टोरक्वे के निकट एक गुफा के उत्खनन में स्टेलेमाइट के मोटे स्तर के नीचे मैमथ और अन्य लुप्त पशुओं की अस्थियों के साथ मानव निर्मित अश्मोपकरण मिले ।

---

1· ए हर्न्डब्यर आफ आर्कियोलाजी, जी· इ· डेनियल पृ· 34

इसी प्रकार के साक्ष्य फ्रांस, स्पेन तथा अन्य यूरोपीय देशों की गुफाओं में भी मिले । फ्रांस के बुशे दि पर्थ को सोम नदी घाटी में ग्रेवल के संचय मे प्रगैतिहासिक पशुओं की हड्डीयों के साथ फ्लिट उपकरण मिले । उन्होंने इस प्रकार की वस्तुओं का संग्रह करना शुरू किया और इस कारण उन्हें उपहास का पात्र बनना पड़ा । परन्तु इस प्रकार की जो प्रगैतिहासिक वस्तुए उपलब्ध हो रही थी उनके फलस्वरूप विद्वानों ने मनुष्य के आदिकाल के सम्बन्ध में कई निश्चित धारणाएं स्थापित की । इंग्लैड में 1859 ई॰ में एक जांच कमीशन इस सम्बन्ध में विचार करने के लिए गठन किया गया । इस कमीशन के एक सदस्य सर जान इवान्स पुरातत्व वेक्ता थे और दूसरे प्रेस्टविच भूतत्व वैज्ञानिक । इन विद्वानों ने बुशे द्वारा संगृहीत प्रगैतिहासिक वस्तुओं का निरीक्षण कर, यह निर्णय लिया कि उनका दावा सही था । इस प्रकार 1859 ई॰ तक भूगर्भ शास्त्रीयों का मानव के अस्तित्व सम्बन्धी दावा सिद्ध हो गया ।

मानव अस्तित्व की प्राचीनता को निर्विवाद सिद्ध करना ही केवल भूतत्व विज्ञान की पुरातत्व को देन माना जायेगा । उत्खनन में स्तर विन्यास का प्रमुख स्थान है क्योंकि इसी आधार पर किसी आबादी स्थल का संस्कृति क्रम निर्धारित किया जाता है । स्तरीकरण मुख्यत: भूगर्भशास्त्र का सिद्धान्त है और पुरातत्व के लिए इसकी उपयोगिता को सर्वप्रथम उन विद्वानों ने समझा जो पुरातत्ववेक्ता होने के साथ भूगर्भ शास्त्री भी थे ।

अतः यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि पुरातत्व का जो भवन आज खड़ा है। उसकी नींव भूतत्व विज्ञान ने रखी।

## पुरातत्व को नृतत्व शास्त्र की देन

भूतत्व विज्ञान के साथ - साथ नृतत्व शास्त्र का भी पुरातत्व के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है । प्रगैतिहासिकालीन संस्कृतियों का विवरण प्रस्तुत करने के लिए नृत्व शास्त्र एवं भूतत्व विज्ञान दोनों की ही आवश्यकता पड़ती है । आदि मानव के जीवन के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक इत्यादि विभिन्न पहलुओं के विवरणों के लिए पुरातत्व को नृतत्व विज्ञान का सहारा लेना पड़ता है । जो मानव समाज आज भी आदिमानव के सदृश जीवन यापन करते हैं, उनकी जीवन पद्धति का अध्ययन मनुष्य जाति के आदिम समाज का विवरण प्रस्तुत करने के लिए बड़ा उपयोगी साबित हुआ है । नृतत्व शास्त्र ने इस बात को प्रमाणित किया है कि संसार के सभी भूखन्डों में सभ्यता के विकास के क्रम में एकरूपता रही है । यद्यपि इसकी गति कहीं तीव्र रही तो कहीं मन्द । जिस भूखण्ड में मनुष्य समुचित प्रगति नहीं कर सका, वहां उसके जीवन यापन की पद्धति आदिम अवस्था में ही रह गयी । अत: परागैतिहासिक संस्कृतियों के अध्ययन में नृतत्व शास्त्र का बड़ा महत्व है । अत: पुरातत्व में उन विद्वानों की देन महत्वपूर्ण मानी जाएगी जो पुरातत्व वेक्ता के

साथ - साथ नृतत्व शास्त्री थे । प्रसिद्ध पुरातत्व वेक्ता पिट - रिवर्स महोदय शुरू में नृतत्व शास्त्री थे और जब उन्होंने पुरातत्व को अपनाया तो इस विद्या को एक नया दृष्टिकोण प्रदान किया । यह वह दृष्टिकोण जिससे अतीत की जीवन पद्धति को वर्तमान में देखना सम्भव हुआ । नृतत्व शास्त्र के जनक टाइलर महोदय माने जाते हैं और पिट - रिवर्स महोदय ने उनके दृष्टिकोण का पुरातत्व में समावेश किया ।

अत: पुरातत्व के अन्दर नृतत्व शास्त्र का भी महत्वपूर्ण स्थान है । नृतत्व शास्त्र पुरातत्व को नयी राह दिखाता है । और पुरातत्व की कई मुश्किलों को भी आसान करता है ।

Seen
B.M.
12/5/97

## पुरातत्व को जीव - विज्ञान की देन

पुरातत्व और जीव विज्ञान का बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है । जीव - विज्ञान के द्वारा ही पुरातत्व को जीव की उत्पत्ति एवं विकास के बारे में पता लग सका । जीव वैज्ञानिकों के अनुसार "जीव विज्ञान का क्षेत्र बहुत व्यापक है इसके अन्तर्गत केवल वर्तमान जीवों का ही नहीं, वरन उन जीवों का भी अध्ययन होता है जो इस धरती के धरातल पर हजारों लाखों वर्षों पूर्व पाये जाते थे किन्तु अब वे किसी कारणवश खत्म हो गये ।" उनके अवशेषों का अध्ययन करके उस समय की उनकी आकृति एवं उनके रहन - सहन आदि के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त की जाती है । ये अवशेष पृथ्वी के गर्भ में पड़े होते हैं । जिनको उत्खनन द्वारा प्रकाश में लाया जाता है । अत: जीव विज्ञान और पुरातत्व का कार्य क्षेत्र लगभग मिलता जुलता है । क्योंकि पुरातत्व प्राचीन समय की प्रत्येक वस्तु का अध्ययन करता है । जीव विज्ञान ने ही प्राचीन मानव के अस्तित्व को प्रमाणित किया एवं जीवों की उत्पत्ति एवं पृथ्वी की उत्पत्ति के बारे में पुरातत्व को जानकारी दी ।

## उपसंहार

इस प्रकार पुरातत्व विज्ञान केवल अध्ययन का विषय ही नहीं है । वरन मानव जाति के विकास को जानने का एक शोधपूर्ण अध्ययन है । पुरातत्व का अर्थ सामान्य तथा प्राचीन तत्व अथवा वस्तुओं के नाम से जाना जाता है । परन्तु आज पुरातत्व का कार्य क्षेत्र बड़ा विस्तृत है । पुरातत्व मानव के विभिन्न पहलुओं जैसे मानव के निवास स्थान, धर्म, कला, व्यापार, भोजन व्यवस्था, सौन्दर्य बोध आदि का अध्ययन कराता है । आज पुरातत्व ने पृथ्वी के गर्भ में छिपी हुई अनेक सभ्यताओं को प्रकाश में लाया है । पुरातत्व ने अनेक नदियों का उत्खनन करके उनमें विलुप्त सभ्यताओं का विवरण प्रस्तुत किया है । पुरातत्व के द्वारा ही भारत की प्राचीनतम सभ्यता सिन्धु सभ्यता और दजला - फरात की घाटी में स्थित मैसोपोटामिया सभ्यता प्रकाश में आई । नील नदी का उत्खनन करके मिश्र की सभ्यता का पता भी पुरातत्व के द्वारा ही लगाया गया । विश्व की अनेक सभ्यताओं की तरह चीन में भी हवांगहो तथा यांगटिसीक्यांग नदियों की घाटी में एक प्राचीन सभ्यता का उदय हुआ जिसका विवरण भी पुरातत्व ने प्रस्तुत किया ।

पुरातत्व के द्वारा ही प्राचीन सभ्यताओं का इतिहास लिखने में बहुत अधिक सफलता प्राप्त हुई है । लेकिन इसके लिए पुरातत्व कई दूसरे विषयों का सहारा लेना पड़ा है । पुरातत्व का आज जो आलीशान महल खड़ा है उसके निर्माण के बहुत से विषयों का योगदान रहा है पुरातत्व को समय - समय पर अलग - अलग विषयों की आवश्यकता पड़ती है । पुरातत्व में सबसे महत्वपूर्ण योगदान रसायन एवं भौतिक विज्ञान का है । रासायनिक पदार्थों की सहायता से पुरातत्व के पास हजारों वर्षों पहले अवशेष सुरक्षित है । रसायन विज्ञान के द्वारा उत्खनित सामग्री की तिथी निर्धारण किया जाता है । कोई भी पुरातत्व वेक्ता तब तक सफल पुरातत्व वेक्ता नहीं बन सकता है जब तक कि उसे रसायन एवं भौतिकी का सही ज्ञान नही । विज्ञान के अतिरिक्त पुरातत्व को कई और विषयों जीव विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, भूतत्व विज्ञान, एवं नृतत्व विज्ञान का सहारा भी लेना पड़ता है । जीव विज्ञान ने पृथ्वी की उत्पत्ति एवं उसकी भिन्न - भिन्न बदलती अवस्थाओं का एवं पृथ्वी पर जीव की उत्पत्ति एवं जीव के विकास का सही ज्ञान, पुरातत्व को दिया । वनस्पति विज्ञान ने भी पुरातत्व की अनेक मुश्किलों को आसान किया है । वनस्पति विज्ञान ने पराग विश्लेषण एवं वृक्ष वलयों के आधार पर तिथी निर्धारण में सहयोग दिया है । पुरातत्व को भूतत्व

विज्ञान की भी देन महत्वपूर्ण मानी जाएगी सर्वप्रथम भूतत्व वैज्ञानिकों को ही पृथ्वी की परतों में संचित आदि मानव के अस्थि अवशेष प्राप्त हुए । प्रागैतिहासिक अध्ययन को भूगर्भ शास्त्र ने ही ठोस आधार प्रदान किया । भूगर्भ शास्त्र ने ही स्तर विन्यास की खोज की जिसके द्वारा किसी आबादी स्थल का संस्कृति क्रम निर्धारित किया जाता है । स्तरीकरण मूलत: भूगर्भ शास्त्र का सिद्धान्त है औरपुरातत्व के लिए इसकी उपयोगिता को उन पुरातत्व वेत्ताओं ने समझा जो भूगर्भ शास्त्री भी थे । पुरातत्व ने नृतत्व शास्त्र का भी बहुत अधिक योगदान है ।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि पुरातत्व अकेला कुछ नहीं कर सकता है । बल्कि उसे अलग - अलग समयों पर अलग - अलग विषयों की आवश्यकता पड़ती है । वास्तव में पुरातत्व पूर्णत: एक वैज्ञानिक विषय है । जिसने अनेक अन्धविश्वासों को झूठा साबित कर मानव के जीवन को एक नयी राह दिखाई ।

सहायक - पुस्तकें

नाम पुस्तक | नाम लेखक


| नाम पुस्तक | | नाम लेखक |
|---|---|---|
| 1 - पुरातत्व की रूपरेखा | ----- | डा॰ मदन मोहन सिंह |
| 2 - पुरातत्व विज्ञान | ----- | राम प्रकाश ओझा |
| 3 - भारतीय पुरातत्व | ----- | डा॰ श्री कृष्ण ओझा |
| 4 - पुरातत्व साहित्य कला एक दृष्टि | --- | डा॰ भगवत शरण उपाध्याय |
| 5 - भारतीय प्रगैतिहास | ----- | राधाकान्त वर्मा |
| 6 - पुरातत्व मीमांसा | ----- | केसव प्रसाद |
| 7 - पुरातत्व निबन्धावली | ----- | राहुल सांस्कृतायायन |
| 8 - पुरातत्व का परिचय | ----- | परमेश्वरी लाल |
| 9 - जीव - विज्ञान | ----- | श्री अहमद अख्तर कलीम |
| 10. Archaeology From the Earth | | Dr. Wheeler |
| 11. Piecing to gether the past | | V.G. Childe |
| 12. Prehistory and Prothistory in India and pakistan. | | Dr. H.D. Sankalia |
| 13. Indian Archaelogy since Independence. | | B.B. Lal. |
| 14, Archaeology in the- field | | O.G.S. Carford |
| 15. Archaeology in the holy land | | Kenyon |

| | | |
|---|---|---|
| 16. | A Hundred year of Archaeology | G.E. Doniel |
| 17. | The world of Archaeology | M. Brion Vol.Tst |
| 18. | Science today Vol.-6 | H.D. Sankalia |
| 19. | Archaeology and society | Grahame, Clarck |
| 20. | Physics and Archacology | M.J. Aitken |
| 21. | Indian Prehistory | V.N. Mishruandmete. |
| 22. | Indian Archaeology today | H.D. Sankalia |

B.M. 12/5/75




12/5

Ahasan



نور حسن



